पाठ-पुनर्पाठ

लॉ क डा उ न

27 वाँ दिन

राजकमल प्रकाशन समूह

क्रम

प्रकाशकीय
3

गांधी और जवाहरलाल
संस्मरण-अंश
रामधारीसिंह 'दिनकर'
5

उदास नस्लें
उपन्यास-अंश
अब्दुल्लाह हुसैन
31

गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान
उपन्यास-अंश
कृष्णा सोबती
70

शरणार्थी
कविता
प्रभात
109

प्रकाशकीय

कोरोना का संकट अब वैश्विक बदलाव का नया प्रस्थान बिंदु बन चुका है। इसका असर मानव जीवन पर कई रूपों में पड़ने वाला है। कुछ संकेत अब स्पष्ट रूप से दिखने लगे हैं। यह हमारी पढ़ने-लिखने की आदतों पर भी अपनी छाप छोड़ेगा, ऐसा लग रहा है। अभी आप चाहते हुए भी अपनी मनचाही किताब खरीद नहीं सकते, हम आपकी कोई मदद कर नहीं सकते। जितनी ई-बुक या ऑडियो बुक ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर मौजूद हैं, उनमें से ही चयन करना, पढ़ना और सुनना एक विकल्प है। दूसरा विकल्प है, घर में उपलब्ध पढ़ी-अनपढ़ी किताबों को इस लॉक डाउन की अवधि में पढ़ जाना। हमसे कई साहित्य-अनुरागियों ने अपने ऐसे अनुभव साझा किए हैं कि उन्हें आजकल कई भूली-बिसरी रचनाएँ याद आ रही हैं। उन्हें पढ़ने का मन हो रहा है। कुछ को नई किताबों के बारे में भी जानने की उत्सुकता है, जिनके बारे में चर्चा सुन रखी है। हमने इन सब स्थितियों के मद्देनज़र 3 मई 2020 तक प्रतिदिन आप सबको एक पुस्तिका उपलब्ध कराने का संकल्प किया है। व्हाट्सएप्प पर नि:शुल्क।

22 मार्च 2020 से हमने फेसबुक लाइव के जरिये अपने व्यापक साहित्यप्रेमी समाज से लेखकों के संवाद का एक सिलसिला बना रखा

है। जब से सोशल डिस्टेंसिंग यानी संग-रोध का दूसरा दौर शुरू हुआ है, तब से हम अपनी जिम्मेदारी और बढ़ी हुई महसूस कर रहे हैं। सभी के लिए मानसिक खुराक उपलब्ध रहे, यह अपना सामाजिक दायित्व मानते हुए अब हम 'पाठ-पुनर्पाठ' पुस्तिकाओं की यह श्रृंखला शुरू कर रहे हैं। ईबुक और ऑडियोबुक डाउनलोड करने की सुविधा सबके लिए सुगम नहीं है। इसलिए हम अब व्हाट्सएप्प पर सबके लिए नि:शुल्क रचनाएँ नियमित उपलब्ध कराने जा रहे हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए आप राजकमल प्रकाशन समूह का यह व्हाट्सएप्प नम्बर 98108 02875 अपने फोन में सुरक्षित करें और उसके बाद उसी नम्बर पर अपना नाम लिखकर हमें मैसेज करें। आपको नियमित नि:शुल्क पुस्तिका मिलने लगेगी। हम समझते हैं कि यह असुविधाकारी नहीं है। आप जब चाहें, पावती सेवा बंद करवा सकते हैं। जब चाहें, पुन: शुरू करा सकते हैं। जब तक लॉक डाउन है, आप घर में हैं लेकिन अकेले नहीं हैं। राजकमल प्रकाशन समूह आपके साथ है। भरोसा रखें।

साथ जुड़ें, साथ पढ़ें...

गांधी और जवाहरलाल

*

रामधारी सिंह 'दिनकर'

12

गांधी जी 29 अगस्त, 1931 को गोलमेज सम्मेलन के लिए रवाना हुए। जवाहरलाल जी उन्हें विदाई देने को बम्बई बन्दरगाह तक गए थे। किन्तु गोलमेज सम्मेलन से लौटते ही गांधी जी गिरफ्तार हो गए, जवाहरलाल पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे।

इस कैद से गांधी जी 23 अगस्त, 1933 को रिहा हुए। और जवाहरलाल जी सितम्बर, 1933 में छूटे। इस बीच गांधी जी ने साम्प्रदायिक एवार्ड के खिलाफ जान की बाजी लगाकर सारे देश में जागृति पैदा कर दी थी और एक तरह से अपने अगले कार्यक्रम, हरिजनोद्धार की पुष्ट भूमिका भी तैयार कर दी थी। गांधी जी ने रिहा होते ही सत्याग्रह के स्थगन की घोषणा कर दी।

जवाहरलाल दोनों ही बातों से चकित हुए। जब गांधी जी ने साम्प्रदायिक

एवार्ड के खिलाफ आमरण अनशन की घोषणा की, पंडित जी को लगा, गांधी जी फिर विचित्र काम कर रहे हैं। अगर जान की बाजी लगानी है, तो वह स्वतंत्रता के प्रश्न पर लगाई जानी चाहिए। क्या समाज-सुधार के काम के लिए गांधी जी के समान अमूल्य जीवन को संकट में डालना ठीक है? और सत्याग्रह के स्थगन का निर्णय भी उन्हें ठीक नहीं लगा।

जेल से छूटने पर पंडित जी गांधी जी से मिलने को पूना गए और गांधी जी से अपने मतभेद की बात उन्होंने खुलकर की। पंडित जी चाहते थे कि पूर्ण स्वाधीनता और समाजवाददृइन दो आदर्शों को जोर से उछालना चाहिए, जिससे जनता अपने ध्येय को पहचान सके और उसके लिए संघर्ष कर सके। किन्तु गांधी जी दोनों ही ध्येयों को गोलमटोल रखना चाहते थे। उनका खयाल था कि जब तक भारत को स्वराज्य के अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते, वह समाजवादी आदर्श की ओर तेजी से नहीं बढ़ सकता है।

पूना में विश्राम लेने के बाद गांधी जी अपने हरिजन कार्यक्रम के साथ देश का दौरा करने लगे। जवाहरलाल जी ने इस अवसर का उपयोग साम्प्रदायिकता पर लेखों से प्रहार करने में किया। किन्तु साम्प्रदायिक एकता से भी उनका ज्यादा जोर समाजवाद पर था। उनका कहना था कि साम्प्रदायिकता का गठबन्धन निहित स्वार्थों के साथ है। अतएव दोनों के दोनों प्रतिक्रियागामी हैं। जवाहरलाल समाजवाद के पक्ष में इस जोर से बोलने लगे कि कार्यकारिणी के सदस्य भीतर-ही-भीतर अप्रसन्न हो गए और अपने बहुसंख्यक अनुयायियों का मन रखने को गांधी जी को जवाहरलाल को, अखबार के माध्यम से, हलकी डाँट सुनानी पड़ी। इससे पंडित जी भी रंज हो गए और उन्होंने

इच्छा प्रकट की कि कार्यकारिणी से उनका इस्तीफा स्वीकार कर लिया जाए। किन्तु इसकी नौबत नहीं आई। 12 फरवरी, 1934 को सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। असल में, 26 दिसम्बर, 1931 से लेकर 4 सितम्बर, 1935 तक पंडित जी जेल से बाहर केवल 9 महीने रहे थे।

मगर उनके जेल जाने के पूर्व 15 जनवरी, 1934 को बिहार में भूकम्प आया। गांधी जी ने कहा, यह भूकम्प इसलिए आया है कि भगवान हमें हरिजनों के प्रति हमारे दुर्व्यवहार के लिए दंड देना चाहते हैं। रवीन्द्रनाथ बोले, ऐसी बातें बोलकर गांधी जी सभ्य संसार की दृष्टि में हमें हास्यास्पद बना रहे हैं। पंडित जी इस विवाद में रवीन्द्रनाथ के साथ थे। किन्तु परिणाम से देखा जाए तो भूकम्प इसलिए आया था कि भगवान कांग्रेस को निष्क्रियता और जिच से निकालना चाहते थे।

13

जब गांधी जी भूकम्प पीड़ित बिहार का दौरा कर रहे थे, उस समय कांग्रेसजनों ने दिल्ली में डॉक्टर अंसारी के सभापतित्व में एक सम्मेलन किया और यह निर्णय किया कि स्वराज्य पार्टी को पुनरुज्जीवित करने का वक्त आ गया है; कांग्रेस को केन्द्रीय असेम्बली के लिए चुनाव लड़ने की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए और यदि गांधी जी तथा कार्यकारिणी समिति को प्रस्ताव मंजूर हो, तो सत्याग्रह आन्दोलन को वापस ले लेना चाहिए।

इस सम्मेलन के बाद डॉक्टर अंसारी और डॉक्टर विधानचन्द्र राय गांधी जी से राय करने को पटना गए। उन्हें यह जानकर आश्चर्य

हुआ कि उनके आगमन के पूर्व ही, गांधी जी खुद इस बात का निश्चय कर चुके थे कि आन्दोलन का अधिकार अपने तक सीमित रखते हुए वे उसे वापस ले लेंगे। जहाँ तक असेम्बली-प्रवेश का प्रश्न था, गांधी जी ने कहा, 'इस मामले के प्रति मेरा वही रुख है, जो सन् 1924 में था।' किन्तु चुनाव लड़ने की उन्होंने कांग्रेसियों को छूट दे दी। उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन को वापस लेने का ऐलान पटना से ही कर दिया।

जवाहरलाल जी उन दिनों देहरादून जेल में थे। गांधी जी ने जिस आसानी से आन्दोलन को वापस ले लिया था, उससे पंडित जी को दु:ख भी हुआ और गांधी जी पर खीज भी हुई। सारी चीजें उन्हें इतनी उलझी हुई दिखीं कि गांधी जी के साथ अपने-आपको बाँध देने पर उन्हें पश्चात्ताप होने लगा: 'मैंने जिन्दगी में जो कठोर शिक्षाएँ प्राप्त की थीं, उनमें से कठोरतम शिक्षा आज मेरे समक्ष थी। वह शिक्षा यह थी कि मौलिक मामलों में किसी भी व्यक्ति पर अवलम्बित होना ठीक नहीं है। जिन्दगी के मैदान में अकेला चलना ठीक है। दूसरों पर निर्भर होने से निराशा होती है।'

पटना में होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस की सभा में अंसारी आदि का विरोध समाजवादियों की ओर से हुआ; किन्तु गांधी जी के भाषण के बाद विरोध ढह पड़ा। पंडित जी ने जब पटना की रिपोर्ट पढ़ी, उनकी छाती दो टूक हो गई। हाय, हम किसके साथ बँधे हैं? यह आदमी तो वर्किंग कमेटी से राय-मशविरा किए बिना ही आन्दोलन छेड़ता है और उसे रोक भी देता है। गांधी जी ने हरिजन आन्दोलन के बारे में भी किसी से राय नहीं ली थी। पंडित जी इस बात से भी अपने-आपको उपेक्षित अनुभव करने लगे।

पटना कांग्रेस ने एक ओर प्रस्ताव पास किया था, जिसमें उन नवयुवकों की आलोचना की गई थी, जो वर्ग-संघर्ष तथा वैयक्तिक जायदाद की जब्ती की भावना का प्रचार कर रहे थे। पंडित जी को लगा, यह चोट भी मुझी पर है। किन्तु वे जेल में थे।

इस बीच कमला जी जोर से बीमार हो गईं। अतएव सरकार ने जवाहरलाल जी को 11 अगस्त, 1934 को देहरादून से इलाहाबाद पहुँचाकर ग्यारह दिनों के लिए छोड़ दिया। पंडित जी के पास आ जाने से कमला जी को बड़ा भरोसा हुआ, वे कुछ प्रसन्न भी रहने लगीं; किन्तु 23 अगस्त को फिर पुलिस की गाड़ी आनन्द भवन के दरवाज़े पर पहुँची और पंडित जी गिरफ्तार कर लिये गए।

यह ग्यारह दिनों की अवधि इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि उस बीच जवाहरलाल जी ने गांधी जी को एक काफी लम्बा पत्र लिखा, जिसमें अपना विरोध, अपना दर्द, अपनी बेचैनी उन्होंने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की और गांधी जी ने उन्हें एक प्यारा-सा जवाब भी दिया। पुराने पत्रों के गुच्छे में ये दोनों पत्र छपे हैं।

जवाहरलाल जी ने अपने 13 अगस्त, 1934 के पत्र में गांधी जी को लिखा :

> 'जब मैंने सुना, आपने सत्याग्रह आन्दोलन को वापस ले लिया है, मुझे रंज हुआ। पहले मैंने केवल समाचार मात्र सुना था। पीछे जब मैंने आपका बयान पढ़ा, मुझे उससे एक ऐसा धक्का लगा, जैसा और कभी नहीं लगा था। सत्याग्रह आन्दोलन की वापसी के लिए मैं लगभग तैयार था। किन्तु उसके लिए आपने जो दलीलें दीं, उनसे मैं स्तम्भित रह गया हूँ। मुझे लगा, मेरे

भीतर जो एक कीमती धागा था, वह टूट गया है। मैं महसूस करने लगा कि दुनिया में मैं अकेला रह गया हूँ। अकेलेपन का एहसास मुझे बचपन से रहा है। मगर तब भी कुछ धागे थे, जो मुझे बाँधे हुए थे; कुछ सहारा था, जो मुझे टिकाए हुए था। अब लगता है, वह सहारा भी जाता रहा।

'...मेरा खयाल है, यह समय है, जब कांग्रेस को अपने सामाजिक और आर्थिक ध्येयों पर स्पष्टता से विचार करना चाहिए। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि कार्यकारिणी समिति इन विषयों को समझे या न समझे; किन्तु वह उन लोगों की निन्दा करने को, उन्हें जाति से अलग करने को तैयार है, जिन्होंने इन विषयों का अध्ययन किया है और जो उन पर अपने कुछ विचार रखते हैं। उन बदनाम विचारों को कोई भी समझने को तैयार नहीं है, जो विचार संसार के कुछ योग्यतम व्यक्तियों के हैं और जिनके लिए उन्होंने आजीवन बलिदान किया है।

'...समाजवाद का अंग्रेजी भाषा में कोई निश्चित अर्थ है। उससे भिन्न अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करना अजीब बात है। कोई व्यक्ति यदि अपने को इंजन-ड्राइवर कहे और तब यह बताए कि उसकी इंजन लकड़ी की है और वह बैलों से चलती है, तो स्पष्ट ही इंजन-ड्राइवर शब्द का वह दुरुपयोग करता है।

'...यह कहना भी तर्क का दुरुपयोग है कि भारत की परिस्थितियाँ भिन्न हैं और जो आर्थिक कानून सारे संसार में चलते हैं, वे भारत में लागू नहीं किए जा सकते...'

इस पत्र का जवाब गांधी जी ने 17 अगस्त को दिया, जिसमें उन्होंने

लिखा :

'मैं तुम्हारे दर्द को समझता हूँ। अपनी भावनाओं को खुली अभिव्यक्ति देकर तुमने ठीक ही किया है। लेकिन लिखित शब्दों को अगर तुम ठीक से पढ़ो, तो तुम्हें पता चलेगा कि इतना दुखी होने की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हें आश्वासन देना चाहता हूँ कि साथी की हैसियत से तुमने मुझे खो नहीं दिया है। मैं वही हूँ, जिसे तुम 1917 ई. से जानते रहे हो। जनसाधारण के हितों के लिए मुझमें वही प्रेम और उत्साह आज भी है, जो इतने दिनों से रहता आया है। पूर्ण स्वाधीनता का अंग्रेजी भाषा में जो अर्थ है, वही स्वाधीनता मैं अपने देश के लिए चाहता हूँ। और हर प्रस्ताव, जिससे तुम्हें ठेस पहुँची है, उसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाया गया है। जो भी प्रस्ताव पास हुए हैं, उनकी जिम्मेवारी मुझ पर है और उनके साथ जिस परिवेश की कल्पना है, वह कल्पना भी मेरी ही कल्पना है। मगर मेरा खयाल है, मैं समय की नब्ज़ पहचानता हूँ और सारे प्रस्ताव उसी के जवाब हैं।

'...समाजवादियों का खयाल काफी किया गया है। क्या मैं उन्हें या उनके द्वारा की गई कुर्बानियों को नहीं जानता हूँ? लेकिन समाजवादी लोग जरा जल्दी में हैं। मगर जल्दी में वे हों क्यों नहीं? मैं केवल यह चाहता हूँ कि जब मैं पिछड़ जाऊँ, वे जरा ठहर जाएँ और मुझे भी अपने साथ लिये चलें। मेरा हू-ब-हू यही रुख है। मैंने कोश में समाजवाद का अर्थ देखा है। यह अर्थ मेरी स्थिति में कोई भी परिवर्तन नहीं करता। समाजवाद की पूरी व्याप्तियाँ समझने को मुझे तुम क्या पढ़ाना चाहते हो?'

'...विस्फोट के बाद रचना की बारी आनी चाहिए। सम्भव है, हमारी मुलाकात न हो सके। तो बताओ, मैं क्या करूँ, किससे बातें करूँ, जो तुम्हारे विचारों का सही प्रतिनिधित्व करता हो?'

आगे चलकर समाजवादी होने का दावा गांधी जी ने भी किया था; किन्तु कांग्रेस में वे बराबर समाजवादियों और गांधीवादियों के बीच सन्तुलन ठीक रखने को चिन्तित रहते थे। गांधी जी समाजवादी टॉल्स्टॉय के अर्थ में थे; किन्तु नेहरू और उनके समाजवादी मित्र मशीनों के भक्त थे। मगर गांधी जी एक छटाँक कर्म को एक टन कल्पना या ज्ञान से अधिक मानते थे। इसलिए ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, नवयुवक भी यह मानते गए कि समाजवादी दृष्टिकोण से भी गांधी जी ही सबसे बड़े क्रान्तिकारी हैं।

14

कमला जी यक्ष्मा से पीड़ित थीं। इलाज करवाने को वे जर्मनी चली गई थीं। वहाँ से अच्छी खबर नहीं आ रही थी। अतएव सरकार ने जवाहरलाल जी को 4 सितम्बर, 1935 को रिहा कर दिया और वे सीधे यूरोप चले गए। किन्तु कमला जी अच्छी नहीं हो सकीं। 28 फरवरी, 1936 को उनका देहान्त हो गया और जवाहरलाल जी भारत लौट आए।

यूरोप-प्रवास में पंडित जी ने विचारों और आदर्शों की उस टकराहट को समीप से देखा, जो प्रजातंत्रवाद और नात्सीवाद के बीच चल रही थी। इस बार समाजवाद में उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया और अप्रैल, 1936 में जब वे दुबारा कांग्रेस के सभापति बनाए गए,

उन्होंने अपने विचारों को फिर बड़े जोर से रखा :

> 'समाजवाद केवल आर्थिक विचारधारा नहीं है, जिसे मैं पसन्द करता हूँ। वह एक शक्तिशाली विश्वास है, एक धर्म है, जिसमें मैं दिल और दिमाग, दोनों से यकीन करता हूँ। भारतीय स्वाधीनता की उपासना मैं इसलिए कर रहा हूँ कि मेरे भीतर का राष्ट्रवादी गुलामी सहने को तैयार नहीं है। स्वाधीनता के लिए और भी जोश के साथ मैं इसलिए काम करता हूँ कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के लिए वह जरूरी कदम है। मैं चाहता हूँ कि कांग्रेस समाजवादी संस्था बन जाए और उन सभी शक्तियों से सम्मिलित होकर आगे बढ़े, जो नई सभ्यता की रचना के लिए सारे संसार में क्रियाशील हैं। मगर मैं यह भी महसूस करता हूँ कि आज की कांग्रेस का बहुमत इतनी दूर जाने को तैयार नहीं होगा।'

जवाहरलाल जी सभापति तो बना दिये गए थे; किन्तु कांग्रेस के बड़े नेता उनके साथ नहीं थे। बड़े नेताओं का सामीप्य गांधी-विचारधारा से था और वे समझते थे कि जवाहरलाल जी गांधी जी के विचारों के विरुद्ध जा रहे हैं। कार्यकारिणी समिति में जवाहरलाल वरिष्ठ नेताओं की कैद में थे। बड़ी मुश्किल से वे नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण और अच्युत पटवर्धन को समिति में ला सके थे; किन्तु बहुमत उनके विरुद्ध था।

खटपट इतनी बढ़ी कि 29 जून, 1936 को राजेन्द्र बाबू, राजा जी और वल्लभभाई समेत सात सदस्यों ने पंडित जी को एक पत्र लिखकर कहा कि जो स्थिति है, उसमें हम लोग आगामी चुनाव-संग्राम का संचालन करने में असमर्थ हैं।

पत्र में लिखा गया :

> 'हम लोगों का खयाल है कि आज की स्थिति में कांग्रेस के सभापति और कार्यकारिणी समिति के सदस्यों द्वारा समाजवाद का प्रचार किया जाना अच्छा नहीं है। कांग्रेस ने इस ध्येय को अभी स्वीकार नहीं किया है। इस प्रकार से देश का हित नहीं सधेगा और इससे स्वाधीनता-संग्राम में बाधा भी पड़ सकती है। हम लोगों का विचार है कि हमारा तात्कालिक उद्देश्य स्वाधीनता की प्राप्ति है और वह उद्देश्य सभी उद्देश्यों से बड़ा है।
>
> 'आप यह भी समझते हैं, और आपने यह कहा भी है कि वर्तमान कार्यकारिणी समिति आपकी चुनी हुई नहीं है, वह आप पर लादी गई है। मगर हमारा लखनऊ का संस्मरण इससे भिन्न है। लखनऊ में हममें से किसी ने भी आप पर थोड़ा भी दबाव डाला हो, ऐसा हमें याद नहीं आता है।
>
> 'हमारा खयाल है, आपकी वक्तृताओं और समाजवादियों के प्रचार से सारे देश में कांग्रेस कमजोर हुई है और बदले में कांग्रेस को कोई लाभ भी नहीं पहुँचा है।
>
> 'ऐसी अवस्था में अगले चुनाव का बोझ उठाने में हम लोग असमर्थ हैं।'

पीछे राजेन्द्र बाबू आदि नेताओं ने इस पत्र को वापस ले लिया; किन्तु इससे जवाहरलाल जी को शान्ति नहीं मिली। उन्होंने बातचीत के दौरान राजेन्द्र बाबू से कहा था कि 'खंजर तो कलेजे से आपने निकाल लिया, लेकिन उसके निशान नहीं मिटे हैं।' और 5 जुलाई,

1936 को जवाहरलाल जी ने एक पत्र में फिर अपना रोना गांधी जी के पास रोया :

> 'प्रिय बापू, मैं शरीर से कमजोर और मन से अशान्त हूँ।... मुख्य बात यह है कि मेरी सरगर्मी कांग्रेस के हित में बाधक समझी जा रही है।...बात पर जितनी भी गर्मी से विचार कीजिए, निष्कर्ष यही निकलता है कि मैं इतना खुराफाती हूँ कि मुझे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। मुझमें कुछ थोड़ी योग्यता है, शक्ति है, आतुरता है और एक व्यक्तित्व है, जो आकर्षक है। ये मेरे गुण हैं, मगर ये गुण ही खतरनाक समझे जा रहे हैं, क्योंकि उनका उपयोग गलत उद्देश्य के लिए किया जा रहा है। इन सारी बातों से जो निष्कर्ष निकलना चाहिए, वह स्पष्ट है।'

गांधी जी ने जवाहरलाल जी को समझाते हुए उत्तर दिया :

> 'जो पत्र तुम्हें भेजा गया था, उसे मैंने देख लिया था। यह मेरा ही सुझाव था कि इस्तीफा न भेजकर पहले यह पत्र ही भेजा जाना चाहिए। मेरी इच्छा थी कि तुम इस पत्र के साथ अधिक न्यायशील होते। मेरा खयाल है, अब आगे इस्तीफे की बात नहीं उठनी चाहिए और आपसी संघर्ष शान्त हो जाना चाहिए। अगर तुमने कुछ किया, तो अखिल भारतीय कांग्रेस को लकवा मार जाएगा और वह संकट का समाधान नहीं निकाल सकेगी। तब कांग्रेस दो विरोधी भाव-धाराओं में बँट जाएगी। ऐसा संकट उत्पन्न करना गलत काम होगा। पत्र की व्याप्तियों का तुम अतिरंजन कर रहे हो। मैं तुम्हारे साथ बहस नहीं करूँगा। जिन साथियों के साथ तुमने इतने दिनों तक बिना किसी खटपट के काम किया है, उनके साथ आगे काम करने में तुम्हें कठिनाई

नहीं होनी चाहिए। अगर तुम्हारे साथी असहनशील हैं, तो तुम्हारी असहनशीलता कुछ कम नहीं है।'

लेकिन साथियों के साथ बिना खटपट के काम करना पंडित जी कम जानते थे। सन् 1924 ई. में जब मौलाना मोहम्मद अली कांग्रेस के सभापति और जवाहरलाल उसके महामंत्री थे, तब भी साथियों से खटपट होने की शिकायत उन्होंने मौलाना से की थी और मौलाना ने धीरज बँधाते हुए उन्हें लिखा था: 'चूँकि कार्यकारिणी के सदस्य तुम पर विश्वास नहीं करते, तुम्हारे सचिवत्व से अपनी नाराजगी जाहिर करते हैं, इसीलिए तो सचिव के रूप में मैं तुम्हें चाहता हूँ।'

15

'द लास्ट डेज ऑव् ब्रिटिश राज' के लेखक लियोनार्ड मोसले ने जवाहरलाल जी के बारे में लिखा है कि 'सर्वोच्च सत्ता की चोटी तथा भारतीय जनता के हृदय पर प्रेमपूर्ण एकाधिपत्य पर नेहरू के पहुँचने का मार्ग तीर्थयात्री का मार्ग अवश्य था; किन्तु उस रास्ते में इतने खन्दक थे, इतनी खाइयाँ थीं कि अगर भाग्य और संयोग ने नेहरू का साथ नहीं दिया होता, तो रास्ते से वे विचलित भी हो सकते थे।'

सुभाषचन्द्र बोस को कांग्रेस ने बर्दाश्त नहीं किया, यह पहला संयोग था। सरदार पटेल ने नम्बर एक बनने की जिद नहीं की, यह दूसरा संयोग था। और जब समाजवादी लोग कांग्रेस छोड़ रहे थे, तब पंडित जी ने कांग्रेस नहीं छोड़ी, यह तीसरा संयोग था।

किन्तु संयोग भी अकारण उत्पन्न नहीं होता। उसके भी कारण होते हैं। वह कारण जवाहरलाल जी की विद्वत्ता में था, चरित्र में था,

निश्छल देशभक्ति में था और एक अत्यन्त सजीव व्यक्तित्व में था। उनके भीतर कोई बात थी, जो और किसी नेता में नहीं थी। संविधान सभा की कल्पना उन्होंने निकाली थी। योजनाबद्ध विकास का स्वप्न सबसे पहले उन्होंने ही देखा था और समस्त संसार में भारत की भूमिका क्या होनी चाहिए, इसकी झाँकी भी देश के सामने उन्होंने ही प्रस्तुत की थी। हलके ढंग से यह कहकर छुट्टी पा लेना हलका काम है कि जवाहरलाल जी इसलिए बढ़े कि वे अमीर खानदान में पैदा हुए थे। जो नेता गरीब खानदानों में जनमे थे, उनमें से कौन था जो जवाहरलाल की-सी भाषा लिखता था, उनके समान हर विषय पर ऊँचाई से बोल सकता था अथवा जिसकी कल्पना सार्वभौम थी? कांग्रेस ने जवाहरलाल को बर्दाश्त करके अपनी आयु बढ़ा ली, अपना बल बढ़ा लिया, अपनी शोहरत और प्रतिष्ठा में वृद्धि की और अपने को इस योग्य बना लिया कि वह समाजवाद का भी प्रचार कर सके। और जवाहरलाल ने चुभन और काँटे बर्दाश्त करके कांग्रेस में रहकर उस सीढ़ी पर अख्तियार कर लिया, जो उन्हें सर्वोच्च शिखर तक ले जानेवाली थी।

पंडित जी वह क्रान्तिकारी थे, जिसका विश्वास सुधार और विकास में रहता है। वे आदमी शान्तिप्रिय थे और उनमें वैराग्य की भी छौंक थी; किन्तु सत्ता पर आरूढ़ होने के प्रति उनमें वैराग्य नहीं था। वे ऐसे राष्ट्रवादी थे, जिसके भाव-तन्तु अन्तरराष्ट्रीयता से बँधे हुए थे। वे एकाकी थे, नि:संग थे, अगाध शान्ति की खोज में थे; किन्तु जिन्दगी की हलचलों से खेलने में उन्हें आनन्द आता था। उनमें दृढ़ता भी थी और लचीलापन भी था, इसीलिए, कोई भी झकोरा उन्हें अपने स्थान से हिला नहीं सका।

अपने-आपके प्रति उनमें अदम्य विश्वास था। वे मानते थे कि मैं किसी भी विषय पर बोल सकता हूँ, कितना भी कठिन काम हो, कर सकता हूँ। 1937 के चुनाव में करिश्मा दिखाने को उन्होंने कांग्रेस के सभापतित्व की दुबारा कामना की और इस विषय का सुझाव गांधी जी को खुद ही दिया। और जब वे चुनावों के दौरे पर निकले, तब लगा, मानो कोई तूफान स्वतंत्रता का सन्देश लेकर सारे देश में दौड़ रहा हो।

पराधीनता के समय भी जवाहरलाल भारत के भावी निर्माण की बातें बहुत बड़े पैमाने पर सोचते थे। मगर उनकी बातें उनके वरिष्ठ साथियों को पसन्द नहीं आती थीं। वे उन बातों को हवाई समझते थे। और गांधी जी की कठिनाई यह थी कि उन्हें गांधीवादियों के साथ जवाहरलाल को लेकर चलना पड़ता था। उस समय अपने किसी अनुयायी को पत्र लिखते हुए गांधी जी ने लिखा था: 'योजना के बारे में जवाहरलाल की सारी कोशिशें बेकार हैं, मगर वह ऐसी किसी चीज से खुश ही नहीं होता, जो बड़ी नहीं हो।'

भारत के आर्थिक विकास के मामले में जवाहरलाल गांधी जी के बहुत-से विचारों को पिछड़ा समझते थे। और गांधी जी भी जवाहरलाल की बहुत-सी बातों को फालतू और भारत के लिए अनुपयुक्त मानते थे। गांधी जी का विचार था कि आदमी की आवश्यकताएँ जितनी कम हों, उतना ही अच्छा है। जवाहरलाल मानते थे कि आदमी की जरूरतें उतनी कम नहीं हैं, जितनी गांधी जी समझते हैं।

जब तक स्वराज्य नहीं हुआ था, बातें सैद्धान्तिक धरातल पर रहीं। किन्तु पंडित जी जब प्रधानमंत्री हो गए, उन पर यह बोझ आ पड़ा कि वे जो कुछ बोलते थे, उसे कार्य का रूप देकर दिखाएँ।

मन से समाजवादी और हृदय से गांधीवादी होने का परिणाम यह हुआ कि जवाहरलाल ने प्रजातंत्र के मार्ग से समाजवाद लाने का संकल्प किया। यह संकल्प अभी तक चरितार्थ नहीं हुआ है। आगे चलकर भी वह चरितार्थ होगा या नहीं, इसे काल बताएगा।

16

1936-37 तक जवाहरलाल जी का गांधी जी से मतभेद आर्थिक कार्यक्रम को लेकर चलता था; किन्तु जब सन् 1939 ई. में महायुद्ध का आरम्भ हुआ, यह मतभेद एक अन्य धरातल पर पहुँच गया।

युद्ध में भारत का रुख क्या हो, इस पर जब विचार किया जाने लगा, पंडित जी के सामने निखिल मानवता का सवाल आ गया। हिटलर और मुसोलिनी के प्रति यूरोप के प्रगतिशील लोगों का जो भाव था, उसे पंडित जी यूरोप जाकर अपनी आँखों से देख आए थे। अतएव उनका मत बना कि युद्धोद्योग में बाधा देना ठीक नहीं है। उससे मित्र-राष्ट्रों की कमजोरी और हिटलर की शक्ति बढ़ेगी। फासिस्ट-विरोधी विचार पंडित जी के पहले से ही रहे थे। युद्ध के ठीक पूर्व, यूरोप घूमने के कारण वे और भी तीव्र हो उठे थे। 1938 ई. में श्रीकृष्ण मेनन के साथ उन्होंने स्पेन के गृहयुद्ध को स्पेन जाकर देखा था। पंडित जी की आशा थी कि इस गृहयुद्ध में विजय प्रजातंत्रवादियों को मिलेगी; किन्तु जीत फ्रैंकों की हो गई। इससे उनके हृदय पर साँप लोट गया था और वे कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहते थे, जिससे हिटलर और मुसोलिनी को बाल बराबर भी लाभ हो।

कांग्रेस ने युद्ध के बारे में जो पहला प्रस्ताव स्वीकृत किया, उसी में

यह बात स्पष्ट हो गई थी कि यदि भारत स्वतंत्र घोषित नहीं किया गया, तो युद्ध में वह कोई सहायता नहीं देगा। उसके बाद एक महीने के लिए पंडित जी चीन चले गए। वहाँ से लौटने के बाद कार्य-समिति का एक प्रस्ताव उन्होंने और लिखा जो 14 सितम्बर, 1939 को पारित हुआ। इस प्रस्ताव में खास जोर उन्होंने इस बात पर दिया कि यह युद्ध दो शिविरों की सेनाओं की मुठभेड़ नहीं है। यह सभ्यता का संकट है और इसका प्रभाव सम्पूर्ण मानव-जाति पर पड़ेगा। किन्तु निष्कर्ष इसका भी वही था, जो पहले प्रस्ताव का, अर्थात् स्वराज्य मिल गया, तो हम सभी साधनों से मित्र-राष्ट्रों की मदद करेंगे, किन्तु स्वराज्य नहीं मिलने से हम कुछ भी करने की स्थिति में नहीं हैं।

यहीं गांधी जी से मतभेद उत्पन्न हुआ। गांधी जी का कहना था कि भारत को अगर मित्र-राष्ट्रों की मदद करनी है, तो वह मदद बिना किसी शर्त के की जानी चाहिए और वह सहायता हर हालत में अहिंसक ही हो सकती है।

जवाहरलाल गांधी जी के इस विचार से सहमत थे कि मित्र-राष्ट्रों के युद्धोद्योग में किसी भी बड़े पैमाने पर बाधा डालना अनुचित होगा। किन्तु गांधी जी की यह बात उन्हें पसन्द नहीं थी कि हम मित्र-राष्ट्रों की सहायता बिना किसी शर्त के करें अथवा हम जो सहायता दें, वह अहिंसक हो। और संयोगवश, कार्य-समिति के अधिकांश सदस्य इस मामले में गांधी जी नहीं, जवाहरलाल के साथ थे।

अब तक आर्थिक प्रश्नों पर कार्य-समिति में जवाहरलाल ही अकेले रहते आए थे। मगर अब जब हिंसा-अहिंसा का प्रश्न उठा, कार्य-समिति में अकेले गांधी जी रह गए।

लेकिन कांग्रेस की इस माँग को वायसराय लिनलिथगो ने स्वीकार नहीं किया। उलटे, चर्चिल इससे चिढ़ गए और लन्दन में उन्होंने ऐलान किया, 'देर-सबेर हमें गांधी जी और कांग्रेस को कुचलना ही पड़ेगा।'

इस स्थिति से क्षुब्ध होकर कांग्रेस फिर गांधी जी के करीब आ गई और बम्बई में उसने प्रस्ताव पास किया कि हम अहिंसक पद्धति से युद्धोद्योग का बहिष्कार करेंगे।

अक्टूबर, 1940 में पंडित जी फिर गिरफ्तार हो गए और गोरखपुर जेल के भीतर एक अंग्रेज मैजिस्ट्रेट ने उनके मुकदमे की जाँच की। इस बार अदालत के सामने जवाहरलाल जी ने जो बयान दिया, वह बड़ा ही ओजस्वी और महत्त्वपूर्ण था। अदालत को सम्बोधित करके उन्होंने कहा :

> 'श्रीमन्! मैं आपके सामने एक व्यक्ति के रूप में पेश किया गया हूँ, जिसने राज्य के खिलाफ जुर्म किया है। जिस सरकार के खिलाफ मैंने जुर्म किया है, आप उसके प्रतीक हैं। किन्तु मैं भी केवल व्यक्ति नहीं हूँ, व्यक्ति से कुछ बड़ी चीज हूँ। मैं आज के युग का प्रतीक हूँ, भारत की राष्ट्रीयता का प्रतीक हूँ, मैं उस देश का प्रतीक हूँ, जो गुलामी की जंजीर तोड़कर ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होना चाहता है। आप इस मुगालते में न रहें कि आप मेरा मुकदमा देख रहे हैं या मुझे सजा देने जा रहे हैं। आप मुकदमा भारत के करोड़ों निवासियों का देख रहे हैं और सजा भी आप उन्हें ही देंगे। मेरा खयाल है, यह जिम्मेदारी किसी अहंकारी साम्राज्य के लिए भी भारी पड़ेगी।'

मैजिस्ट्रेट ने जवाहरलाल जी पर चार साल कैद की सजा ठोंक दी।

17

जब पर्ल बन्दरगाह पर जापान ने अख्तियार कर लिया, अंग्रेजों के कान फिर से खड़े हो गए। इस घटना का अर्थ यह था कि अमरीका और जापान युद्ध में प्रवेश कर रहे हैं। इसलिए दिसम्बर, 1941 में जवाहरलाल रिहा कर दिये गए।

इस बीच हिंसा-अहिंसा को लेकर फिर से मतभेद बढ़ने लगा। कांग्रेस के नेता बम्बई प्रस्ताव का अर्थ यह लगाते थे कि अहिंसा का प्रयोग हम देश की भीतरी समस्याओं के लिए कर सकते हैं। अगर आक्रमण बाहर से हो, तो वैसी हालत में हम हिंसा का भी सहारा ले सकते हैं। किन्तु गांधी जी हर हालत में हिंसा को त्याज्य समझते थे। उन्होंने लिखा: 'मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत और समग्र विश्व की ध्वंस से रक्षा केवल अहिंसा कर सकती है।' और इस घोषणा के साथ वे कांग्रेस से फिर अलग हो गए।

इस बीच चियाङ्-काइ-शेक ने भारत की यात्रा की और गांधी जी को उन्होंने सलाह दी कि अभी आप आन्दोलन नहीं छेड़ें, तो अच्छा रहेगा। फिर सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स आए। जवाहरलाल जी की इच्छा थी कि क्रिप्स-योजना संशोधनपूर्वक मान ली जाए, तो भारत को इस विश्वयुद्ध में हिस्सा लेने का सुयोग मिले। किन्तु क्रिप्स-मिशन असफल हो गया। अतएव संसार को यह जताने को कि हम अभी भी मित्र-राष्ट्रों को कमजोर बनाने के पक्ष में नहीं हैं, पंडित जी ने बयान दिया कि 'अगर कोई हमलावर भारत पर हमला करेगा, तो हम उसके सामने घुटने नहीं टेकेंगे, बल्कि गुरिल्ला पद्धति से उसके खिलाफ युद्ध करेंगे। अभी भी हम यही चाहते हैं कि भारत में अंग्रेजों के युद्धोद्योग में कहीं कोई बाधा नहीं दी जाए।'

एक ओर तो देश में यह हिंसा-अहिंसा का द्वन्द्व चल रहा था, दूसरी ओर जनवरी, 1941 ई. में सुभाषचन्द्र बोस पुलिस को चकमा देकर भारत से बाहर भाग गए। देश में इस बात की चर्चा चलने लगी कि अब सुभाष बाबू बाहर से भारत पर चढ़ाई करवाएँगे। यह देश के लिए भावनात्मक उलझन का समय था। क्रिप्स-मिशन असफल हो गया था; जापान तेजी से बर्मा की ओर बढ़ता आ रहा था; कांग्रेस अपमानित अनुभव कर रही थी; और जवाहरलाल की घोषणाओं के बावजूद देश में हिटलर और जापान के प्रति सहानुभूति बढ़ती जा रही थी। अतएव कांग्रेस महासमिति ने इलाहाबाद में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया कि बाहरी हमलों से भारत को स्वाधीनता नहीं मिल सकती। अगर कोई दुश्मन चढ़ ही आया, तो जनता को चाहिए कि उसका सामना वह अहिंसा और असहयोग के उपायों से करे।

अवश्य ही जवाहरलाल जी ने गांधी जी का मन रखने को अहिंसा की यह सिफारिश की होगी। जिस व्यक्ति ने देश से अपील की थी कि वह गोरिल्ला-पद्धति से लड़ाई लड़ने को तैयार रहे, उसी ने उस प्रस्ताव का प्रारूप भी तैयार किया, जिसमें गोरिल्ला-पद्धति के बदले अहिंसा को अपनाने की बात कही गई थी। यह भी जवाहरलाल जी के लचीलेपन का ही एक प्रमाण था।

किन्तु गांधी जी अहिंसा पर जोर इसलिए दे रहे थे कि उन्हें अंग्रेजों को चैन में नहीं छोड़ना था। वे मन-ही-मन अपने जीवन के आखिरी संग्राम के लिए सन्नद्ध हो रहे थे और वे कहीं भी ऐसी भूमिका नहीं छोड़ना चाहते थे, जिससे आगे चलकर हिंसा को कोई सैद्धान्तिक प्रश्रय मिल सके। सन् '42 के अप्रैल-मई से ही गांधी जी की लेखनी से चिंगारी छिटकने लगी थी। उन्होंने अंग्रेजों को समझाना शुरू कर

दिया था कि खुदा के वास्ते तुम हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाओ और हमें अराजकता में या हमारी किस्मत पर छोड़ दो।

> 'तुम्हें यहाँ बैठे-बैठे बहुत दिन हो गए। तुमने हमारा कोई उपकार नहीं किया। मैं कहता हूँ, अब यहाँ से भागो और हमें छोड़ दो। ईश्वर के नाम पर उठो और जाओ। हमें भगवान के भरोसे छोड़ दो। तुम्हारे जाने के बाद अराजकता मचे तो मचे, मगर तुम चले जाओ।'

गांधी जी की गर्मी जितनी ही बढ़ती जाती थी, जवाहरलाल जी उतने ही परेशान होते जाते थे। गांधी जी पर राष्ट्रीयता का जो जोश छा रहा था, उससे जवाहरलाल घबराते थे और उन्हें लगता था, मानो गांधी जी भारत की हित-साधना के प्रयत्न में विशाल मानवता के हितों की उपेक्षा कर रहे हैं।

जवाहरलाल जी गांधी जी से मिलने को कई बार वर्धा गए और कई बार उनके साथ उन्होंने विचार-विमर्श किया; किन्तु गांधी जी कुछ करने को बेचैन थे। 'अंग्रेजों की तानाशाही के आगे घुटने टेककर बैठ जाना आज भयानक बात होगी। इससे देश के नैतिक बल की रीढ़ टूट जाएगी। यदि देश ने अंग्रेजों के आगे घुटने टेक दिये, तो वह अन्य हमलावर के आगे भी घुटने ही टेकेगा। अकर्मण्यता हमें लकवे का शिकार बना देगी। कर्मठता हमारी शिराओं में शक्ति का संचार करेगी।'

जवाहरलाल ने सवाल किया, 'नैतिक कारणों से अंग्रेजों के साथ संघर्ष चाहे जितना भी न्यायसंगत हो, किन्तु इससे युद्धोद्योग में क्या बाधा नहीं पड़ेगी, और एक ऐसे मौके पर जब भारत खतरे में आ

गया है?'

गांधी जी का उत्तर था, 'ईश्वर में विश्वास करो। हम और तुम यही तो चाहते हैं कि युद्ध का नैतिक आधार बदल जाए? भारत औपनिवेशिक दासता का सबसे बड़ा प्रतीक है। अगर हमीं आजाद नहीं हुए, तो दुनिया के और गुलाम देशों के आगे क्या उम्मीद है? वैसी हालत में इस लड़ाई का लड़ा जाना ही व्यर्थ हो जाएगा।'

गांधी जी के साथ जवाहरलाल का इस समय इतना मतभेद हो गया था कि आचार्य नरेन्द्रदेव से गांधी जी ने पूछा, 'अगर मैंने आन्दोलन शुरू किया, तो जवाहर पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी?'

नरेन्द्रदेव जी बोले, 'वे जेल से बाहर तो नहीं रहेंगे।'

गांधी जी ने कहा, 'हाँ, सो कैसे हो सकता है?'

किन्तु जब आन्दोलन समाप्त हुआ और उसके हिंसक पक्ष की जिम्मेवारी उठाने से नेतागण शरमाने लगे, तब जवाहरलाल जी ने वीर गर्जना की, 'इस आन्दोलन की सारी जिम्मेवारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ।'

18

गांधी जी और जवाहरलाल के बीच मतभेद था, स्पर्धा नहीं थी। गांधी जी तो जवाहरलाल से स्पर्धा क्या करते, जवाहरलाल में भी इतनी नासमझी नहीं थी कि मतभेदों से ऊबकर वे दूसरी पार्टी बनाएँ और गांधी जी को खुली चुनौती दें। जवाहरलाल अपना और गांधी जी का तुलनात्मक महत्त्व जानते थे। उनके भीतर यह श्रद्धा जम गई थी

कि इस देश में अभी जो कुछ हो सकता है, गांधी जी के इशारों से ही हो सकता है। इसी प्रकार, गांधी जी भी जवाहरलाल को अपने लिए अपरिहार्य समझते थे। वे जानते थे कि देश के नौजवानों में जवाहरलाल के प्रति एक खास आकर्षण है, जिसकी पूर्ति और कोई नहीं कर सकता। वे यह भी जानते थे कि जवाहरलाल के ही पास वह भाषा है, जिसे बाहरी विश्व समझता है और जवाहरलाल के पास जो सार्वभौम दृष्टि है, वह और किसी के पास नहीं है। इसीलिए वे जवाहरलाल को अपने से दूर जाने देना नहीं चाहते थे। बहुत-से समाजवादी तथा साम्यवादी कांग्रेस से हट जाएँ, तो भी एक जवाहरलाल को लेकर कांग्रेस मजे में उनका मुकाबला कर सकती है, यह विश्वास भी गांधी जी के भीतर था और काल ने, गांधी जी के मरने के बाद भी, उसे गलत साबित होने नहीं दिया।

गांधी जी को सबसे बड़ा विश्वास इस बात का था कि जवाहर कभी भी उन्हें धोखा नहीं देगा, कभी भी उनके खिलाफ बगावत नहीं करेगा और रोना-धोना वह चाहे जितना भी करे, किन्तु उसके भीतर यह कठोरता नहीं है कि उन्हें छोड़कर वह अलग हो जाए।

जब युद्ध को लेकर दोनों नेताओं के बीच मतभेद बहुत बढ़ गया था, उन दिनों सन् 1942 ई. में वर्धा में होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में गांधी जी ने कहा था :

> 'लोग कहते हैं कि मेरे और जवाहरलाल के बीच तनाव आ गया है और हम लोग एक-दूसरे से दूर जा पड़े हैं। हम लोगों को एक-दूसरे से दूर करने के लिए मतभेद काफी नहीं हैं। जब से हम सहकर्मी हुए, मतभेद तभी से रहे हैं और, तब भी, जो बात मैं वर्षों से कहता आया हूँ, उसे आज फिर दुहराना

चाहता हूँ कि मेरे उत्तराधिकारी राजा जी नहीं होंगे, उत्तराधिकारी जवाहरलाल होगा। जवाहरलाल कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझ में नहीं आती है, न मैं उसकी भाषा समझता हूँ। मगर भाषा न मालूम हो, तब भी दो दिल मिलते ही हैं। और मैं जानता हूँ कि मेरे मरने के बाद जवाहरलाल मेरी भाषा में बात करेगा।'

पंडित जी बड़े ही स्वाभिमानी पुरुष थे। वे अपने दैन्य या विपन्नता की बात किसी से भी नहीं करते थे, यहाँ तक कि अपने पिता से भी नहीं। किन्तु ऐसी बातें भी वे गांधी जी को निश्छल होकर बता देते थे।

नेहरू-परिवार की समृद्धि का उल्लेख लोग आँख मूँदकर करते हैं। किन्तु सच्ची बात यह है कि मोतीलाल जी की कमाई के कम होते ही यह समृद्धि घटने लगी थी। 1924 ई. में पंडित जवाहरलाल पर यह शर्म गुजरने लगी थी कि पूरा मर्द होकर भी मैं बाप की कमाई पर जी रहा हूँ। क्यों नहीं अपने पाँव पर आप खड़ा होकर पिता के बोझ को थोड़ा हलका कर दूँ? यह बात उन्होंने चुपके से गांधी जी को लिख भेजी, मगर इसकी भनक किसी तरह पं. मोतीलाल जी के कान में पड़ गई। स्वभावत: ही वे बेटे पर झल्ला उठे। किन्तु परिस्थिति सँभालने में गांधी जी से अधिक चतुर व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। उन्होंने भी जवाहरलाल जी को चुपके से जवाब भेजा :

'तुम्हारा हृदयस्पर्शी, मार्मिक, वैयक्तिक पत्र मिला। तुम अपनी समस्या का सामना बहादुरी से करोगे, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। पिताजी अभी गुस्से में हैं। अभी मुझे या तुम्हें उनके गुस्से को बढ़ाना नहीं चाहिए।...क्या तुम्हारे लिए कुछ रुपयों का इन्तजाम करूँ? मगर तुम कोई ऐसा काम क्यों नहीं करते, जिससे कुछ आय भी होती हो? पिता के घर में रहते हुए भी तुम्हें अपने

> पसीने की कमाई खानी ही चाहिए। क्या तुम्हें किसी पत्र का संवाददाता बनना पसन्द होगा? या कहो तो तुम्हारे लिए कहीं प्रोफेसरी की तलाश करूँ?'

लगता है, सन् 1925 ई. के आते-आते पंडित जी धनाभाव का अनुभव और भी तीव्रता से करने लगे थे, क्योंकि 30 सितम्बर, 1925 को गांधी जी ने जो पत्र उन्हें लिखा, उसमें इसी विषय की चर्चा है :

> 'मैं किसी भी व्यक्ति से यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि तुम पंडित मोतीलाल जी की सहायता करो। लेकिन जहाँ तक तुम्हारा सवाल है, मैं एक या अनेक मित्रों से ऐसा अनुरोध कर सकता हूँ और तुम्हारी मदद करने में उन्हें फख्र ही होगा। अगर तुम्हारी स्थिति बहुत असाधारण नहीं हो, तो मेरी सलाह होगी कि तुम्हें भी सार्वजनिक कोष से सहायता स्वीकार करनी चाहिए। मेरा निश्चित मत है कि तुम्हें कोई कारोबार करना चाहिए, जिसे पारिवारिक कोष में तुम अपना अंशदान दे सको। यदि यह पसन्द नहीं हो, तो सार्वजनिक क्षेत्र में खड़ा रहने के लिए तुम्हें मित्रों का साहाय्य स्वीकार करना चाहिए। यह निर्णय जल्दबाजी में नहीं किया जाना चाहिए। मगर मुझे तो तुम्हारी फिक्र है। वह काम जरूर किया जाना चाहिए, जिससे तुम्हें मानसिक शान्ति मिले। बिजनेस-मैनेजर होकर देश का काम तुम कम नहीं करोगे, ऐसा मैं मानता हूँ। और तुम अगर कोई रोजगार करो, तो इससे पिताजी को बुरा नहीं मानना चाहिए।'

पंडित जी को गांधी जी जो भी खत लिखते थे, अक्सर वे मुहब्बत से लबरेज होते थे और उनसे यह स्पष्ट विदित होता था कि अपने इस अद्वितीय शिष्य के लिए उन्हें कितना गौरव और अभिमान था।

जब सन् 1928 ई. में साइमन कमीशन के बहिष्कार के सिलसिले में जवाहरलाल जी पर लाठी के वार हुए, गांधी जी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए लिखा :

> 'मेरा प्रेम स्वीकार करो। तुमने बड़ी बहादुरी का परिचय दिया। मगर आगे तुम्हें इससे भी बड़ी बहादुरी का परिचय देना है। भगवान तुम्हें अभी बहुत वर्षों तक आबाद रखें और हिन्दुस्तान को गुलामी से छुड़ाने में तुम्हारा उपयोग, खास तौर से चुने हुए यंत्र के रूप में, करें।'

कांग्रेस के भीतर जवाहरलाल जी के प्रतिद्वन्द्वी सुभाष बाबू नहीं, सरदार पटेल थे। पंडित जी और सरदार के बीच खास मतभेद समाजवादियों के साथ किए जानेवाले सलूक को लेकर था। पंडित जी ने कांग्रेस के भीतर अपना स्थान विद्रोही का नहीं, समाजवादियों के संरक्षक का बना रखा था। किन्तु सरदार पार्टी के सूत्रधार थे। उनके विरुद्ध जवाहरलाल जी समाजवादियों को काफी संरक्षण नहीं दे सके। नतीजा यह हुआ कि बहुत-से समाजवादियों ने कांग्रेस छोड़ दी।

जब गांधी जी नहीं रहे, एडगर स्नो ने जवाहरलाल से पूछा, 'समाजवादियों के लिए आप सहानुभूतिशील रहे हैं। किन्तु सरदार पटेल समाजवादियों को नहीं चाहते हैं। तो फिर आप पटेल के साथ मिलकर काम कैसे करते हैं?'

पंडित जी ने कहा, 'जब स्पष्ट कार्यक्रम निर्धारित करने का सवाल उठता है, तफसील में सरदार और मैं, अक्सर एक-दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं। पहले भी ऐसा ही होता था और आज भी ऐसी ही बात है। मगर हम दोनों के पारस्परिक विरोध का शमन पहले गांधी जी

करते थे और अब वही काम उनकी याद करती है। गांधी जी अपने जीवन-काल में जितने शक्तिशाली थे, मरने के बाद उससे अधिक शक्तिशाली हो गए हैं। मैं जानता हूँ कि अगर मैं इशारा कर दूँ तो सरदार मंत्रिमंडल छोड़ देंगे और वे भी जानते हैं कि उनका इशारा पाते ही मैं मंत्रिमंडल से निकल जाऊँगा। गांधी जी की याद हम दोनों को बाँधे हुए है।'

जब गांधी जी की हत्या हुई, लॉर्ड माउंटबेटन ने पहला काम यह किया था कि जवाहरलाल और सरदार से कहा, 'अपने गुरु का चरण स्पर्श करो और शपथ लो कि तुम दोनों एक रहोगे?' उस दिन गांधी जी के शव के पास सरदार और जवाहरलाल एक-दूसरे को अंकवार में भरकर रोए थे। वे आँसू भारत के निकटवर्ती भविष्य के लिए वरदान सिद्ध हुए।

[*लोकदेव नेहरू* पुस्तक से]

उदास नस्लें

*

अब्दुल्लाह हुसैन

38

मुन्ना लाल सीमेंट फ़ैक्टरी में दोपहर का घंटा हुआ, तो वे सब खाने की पोटलियाँ खोलकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए। उनको एक जगह पर जमा होकर खाने की इजाज़त न थी, क्योंकि फ़ैक्टरी चौबीस घंटे चलती थी और मज़दूर और कारीगर आठ-आठ घंटे की तीन शिफ़्टों में काम करते थे। उनमें से हर एक को आठ घंटे मुसलसल काम करना पड़ता था। जहाँ तक खाने का तअल्लुक़ था, क़ानून में कोई ऐसा शिक़[1] न थी, जिससे ज़ाहिर होता कि ये लोग खाने की अहलियत भी रखते थे। यह फ़ैक्टरी एक्ट था, जिसके बनानेवाले, कि जानते थे कि मशीनरी के बग़ैर दुनिया भर के आदमी मिलकर भी सीमेंट नहीं बना सकते, मशीनरी की अहमीयत का ख़ूब इल्म रखते थे। कहा जाता है कि जब 'एक्ट' बनाया जा रहा था, तो एकाध

1. धारा

मर्तबा खाने का ज़िक्र आने पर किसी तरफ़ से मज़ाक़ में कहा गया कि हर क़िस्म के खाने का ज़िक्र हमारी मज़हबी और आसमानी किताबों में बहुत पहले ही आ चुका है, अलबत्ता सीमेंट की अह्मीयत को वहाँ पर ख़ौफ़नाक हद तक नज़रअन्दाज़ कर दिया गया है।

चुनाँचे 'फ़ैक्टरी एक्ट' में खाने का कोई ज़िक्र नहीं।

लेकिन खाने पर चूँकि आम लोगों की ज़िन्दगी का दारोमदार होता है इसलिए जब अफ़सरों के लिए दोपहर के वक़्फ़े का घंटा बजता तो वे लोग भी मशीनों पर नज़र रखे हुए, अपने-अपने काम पर चौकस बैठे जल्दी-जल्दी खाना खा लिया करते और उनके फ़ोरमैन, कि ख़ुद भी खाना खाते थे, उनकी इन छोटी-छोटी बेपरवाइयों पर ध्यान न देते। वे सब अपना खाना साथ लेकर आते और काम पर पहुँचकर अपनी पोटलियों को तख़्तों पर या मशीनों के ग़ैर-मुहर्रिक[1] पुरज़ों पर रख देते। इस तरह खाने के वक़्फ़े तक वह पोटली मशीन का एक साकिन[2] हिस्सा बन जाती, लेकिन उसके अन्दर कोई पुरज़ा, दूसरे पोशीदा[3] पुरज़ों की तरह, लगातार चलता रहता, और अपने साथ एक इनसान को भी मुस्तक़िल चलाए रखता। उसे तरोताज़ा रखता और दूसरे पुरज़ों से उसका ध्यान हटाए रखता। खाने के बाद वे छोटे-से कपड़े को झाड़ते, उसमें रची हुई पुरानी, सियाह चिकनाई से अपने ख़ुश्क चेहरों और गर्दनों को चिकना करते और कसकर सिरों पर बाँध लेते। फिर वे दीवार के सहारे बैठकर एक-एक सिगरेट पीते और मशीनरी की भारी, नींद लानेवाली, मुस्तक़िल ताल के नीचे जागते रहने की कोशिश करते हुए छुट्टी के वक़्त का इन्तिज़ार करते रहते। दूसरे पुरज़ों से उन्हें कभी भी दिलचस्पी न हुई थी।

---

1. गतिहीन, 2. निश्चल, 3. छिपा हुआ।

इसके बावजूद, कभी-कभी वे अपनी जगह से खिसकने में कामयाब हो जाते। इस सिलसिले में पेशाब का बहाना सबसे ज़्यादा कामयाब रहता। कभी-कभी तो वे दिन में कई-कई बार बीमारी का बहाना करके जाते और टीन की बनी हुई छोटी-छोटी टट्टियों में दीवार के सहारे खड़े होकर सिगरेट पीते, ऊँची आवाज़ में एक-दूसरे से बातें करते और अकेले होते, तो दीवार पर फ़ोरमैन के ख़िलाफ़ बुरी-बुरी बातें लिखते और नफ़रत से होंठ सुकेड़कर मुस्कराते। फिर सिगरेट को कूड़े में फेंककर इन्तिहाई सुस्त-रफ़्तारी के साथ वापस अपनी जगह तक आते। ऐसे में अगर कोई फ़ोरमैन उन्हें देख लेता, तो गालियों से भरपूर ज़बान में उन्हें काम पर पहुँचने को कहता। जवाब में वे ढिठाई से हँसते और गालियाँ बड़बड़ाते हुए चाल को हलका-सा तेज़ कर देते। मशीनरी ने उन्हें बिलकुल निकम्मा कर दिया था।

बातें करने का उन्हें यूँ भी मौक़ा कम ही मिलता। मशीनों का शोर इतना ज़्यादा था कि जब कभी वे ख़ामोश बैठे-बैठे उकता जाते, तो साथवाले से बात करने के लिए उन्हें पूरी आवाज़ से चीख़ना पड़ता, चुनाँचे दो-एक बातों में ही उनके गले की तसल्ली हो जाती। वे उन गूँगे, कुन्द-ज़ेहन और सदा थके-माँदे गधों की तरह थे, जिन्हें चलाने के लिए क़दम-क़दम पर डंडे मारने की ज़रूरत पड़ती है।

वह मई के महीने का एक बेहद गर्म दिन था और बाहर लू चल रही थी। अन्दर वे अपनी- अपनी पोटलियाँ खोले खाने में मसरूफ़ थे। सिर्फ़ अली हस्बे-मामूल ख़ामोश बैठा ख़ाली-ख़ाली नज़रों से मशीन को तके जा रहा था। उसकी बीवी बीमार रहते-रहते अब चारपाई से जा लगी थी और वह दिन में सिर्फ़ एक बार खाना खाता था। कभी-कभी ख़ुशक़िस्मती से उसकी आँख ज़रा सवेरे खुल जाती, तो

वह जल्द-जल्द रोटी पकाकर खा लेता। लेकिन वह शुरू-शुरू की बात थी। अब वह इस सारे झमेले से इतना बेज़ार और बेपरवाह हो गया था कि सोने-जागने, खाने-पीने और काम पर जाने से बहुत कम दिलचस्पी उसको रह गई थी और वह भूका रहने का आदी हो चुका था। सुबह सवेरे जब उसकी आँख खुलती, तो वह ख़ामोशी से बिस्तर पर पड़ा आयशा की गहरी साँसों, मुँह अँधेरे के परिन्दों और सुबह सवेरे की नींद से भरी आवाज़ों को सुनता रहता। फिर वक़्ते-मुक़र्ररा पर उठकर ठंडे पानी के छींटे मारता, चन्द घूँट पीता और आयशा पर एक आख़िरी नज़र डालकर काम पर चला जाता। शाम को आकर आग जलाता और पानी में सब्ज़ियाँ उबालता, गेहूँ या मकई की मोटी-मोटी रोटियाँ पकाता और पहले आयशा को खिलाता, फिर ख़ुद खाता। आयशा ज़्यादातर उबली हुई सब्ज़ी खाती। कभी-कभार वे चावल और गोश्त भी खाते। ख़ामोशी से खाना खाकर वे अपनी जगह पर लेट जाते और थोड़ी देर के बाद आवारा बिल्लियाँ आकर जूठे बर्तन चाटने लगतीं। बातें करने की हफ़्तों नौबत न आती।

हर तीन माह के बाद जब उसके पास कुछ पैसे जमा हो जाते, तो वह डॉक्टर को लेकर आता, जो उसकी बीवी के लिए कई क़िस्म की दवाइयाँ तजवीज़ करके चला जाता। उनमें जितनी वह ख़रीदकर ला सकता था, ले आता और बाक़ाइदगी से आयशा को पिलाने लगता। सिर्फ़ एक बाक़ाइदगी और एक क़ानून, जो उसकी ज़िन्दगी में रह गया था, आयशा की दवा का था। जितना वक़्त वह उसके पास रहता, एक डॉक्टर की-सी सख़्ती के साथ वक़्त पर दवा पिलाता रहता बग़ैर किसी जज़्बे के, जैसे मशीन को तेल देते हैं। बीवी के साथ उसकी वफ़ादारी, भूके पेट काम करने की अहलियत

और दुनिया के दूसरे कामों से उसके इस्तिग़ना[1] को देखकर उसके साथी उसे 'अली साईं' या सिर्फ़ 'साईं' के नाम से पुकारने लगे थे।

इसके बावजूद यह दोपहर का वक़्त उसके लिए सबसे मुश्किल होता। पहले-पहल उसका कोई-न-कोई साथी उसे खाने की दावत दे देता और वह कुछ-न-कुछ खा लिया करता, लेकिन कोई किसी को कब तक खिला सकता था। अब उसको कोई भी न पूछता। सब जानते थे कि यह उसका मामूल[2] बन चुका था और इसके अलावा उनमें से हर एक अपने दिल में मुत्मइन था कि अपनी दोस्ती की हद तक वह काफ़ी अरसे तक उसको खिला चुका था। यह बात न थी कि अली सख़्त भूक महसूस किया करता, बल्कि उसकी खाने की ख़्वाहिश ही रोज़-ब-रोज़ कम होती जा रही थी।

लेकिन वह महसूस करता था कि दोपहर के वक़्त जब वे सब अपने-अपने खाने की पोटलियाँ अपने सामने रखकर बैठते, तो कम-से-कम एक दफ़ा ज़रूर उसकी तरफ़ देख लेते, और खाने के दौरान बराबर नज़रें चुरा-चुराकर उसकी जानिब देखते जाते थे (हालाँकि इसमें ज़्यादातर उसकी सोच शामिल थी) इस सारे वक़्त में वह ख़ाली-ख़ाली नज़रें मशीन पर जमाए बैठा रहता था।

सिर्फ़ एक बिशन था, जो बाक़ाइदगी के साथ दोस्ती निभाए जा रहा था। वह एक बेहद ख़ुश-मिज़ाज नौजवान आदमी था, जो अभी काम सीख रहा था और अपनी माँ के साथ अकेला एक कोठरी में रहता था। उसकी माँ साथवाली कपड़े की मिल में काम करती थी। किसी ने कभी उसको दुखी न देखा था। वह हमेशा हँसता और हँसाता रहता। अपने साथियों में वह 'कुमारी' के नाम से मशहूर था।

1. निस्पृहता, 2. नित्य नियम।

इसकी वजह यह थी कि अपने बाज़ू पर उसने एक हसीन औरत की तस्वीर खुदवा रखी थी और जब वह अपनी कलाई और उँगलियों को घुमाता-फिराता, तो बाज़ू के पट्ठों को हरकत देने की वजह से देखनेवालों को खुदी हुई औरत नाचती हुई नज़र आने लगती। हर पहले आदमी की ख़्वाहिश पर वह उसे नचाने लगता, क्योंकि उस पर उसका कुछ भी ख़र्च न होता था। सिर्फ़ अपनी माँ के सामने वह कभी बाज़ू नंगा न किया करता।

वह बारह महीने जौ की रोटी लेकर आता, जिसको वह कच्चे-पक्के बेरों के साथ, जिन्हें वह रास्ते में उगी हुई बेरियों से पत्थर मार-मारकर गिराता, खाया करता। बेरों की ख़ातिर उसको मुँह-अँधेरे घर से चलना पड़ता था। किसी ने उसको कभी कुछ और खाते हुए न देखा था, हालाँकि उसका कहना था कि दीवाली के मौक़े पर घर में वह चावल और गोश्त और गेहूँ की रोटी खाया करते थे। वह बाक़ाइदगी से हर दूसरे-तीसरे दिन अली को बेर दिया करता था और कभी-कभार रोटी का एक टुकड़ा भी दे देता। अली बग़ैर शुक्रिया अदा किए उससे खाने की चीज़ें क़बूल कर लिया करता, क्योंकि वह जानता था कि बिशन अपनी ज़रूरत से ज़्यादा बेर लेकर आता था और रोटी वह उसको सिर्फ़ उसी हालत में देता, जबकि वह ख़ुद पेट भरकर खा चुकता, लेकिन यह दोस्ती सब देखनेवालों की बातें थीं। उन दोनों के दरमियान ऐसी कोई बात न थी। वे उन दो गँवार भाइयों की तरह थे, जो एक मुद्दत तक साथ-साथ रहने के बाद उस उम्र को पहुँच जाते हैं, जब उनमें बग़ैर शुक्रिए के एक-दूसरे की ख़ुशी से बज़ाहिर कोई सरोकार नहीं होता। या फिर उन दो बूढ़े जानवरों की तरह, जो एक जंगल में तन्हा रहते हैं और जिनके दिल में एक-दूसरे के लिए हमदर्दी, रहम और दोस्ती के जज़्बे के सिवा

कुछ नहीं होता। जो एक-दूसरे की कमी को महसूस भी करते हैं और मुस्तक़िल नज़रअन्दाज़ भी करते रहते हैं।

इधर कुछ रोज़ से, जब से मज़दूर यूनियन ने हड़ताल का नोटिस दिया था, अली पर बहुत लोगों को नज़रे-करम[1] थी। हर कोई दोपहर के वक़्त उसे खाने की दावत देता और उसके इनकार करने पर इत्मीनान का साँस लेता, क्योंकि दिल से कोई भी न चाहता था कि वह उनकी दावत क़बूल करे। अली भी जानता था, कि नोटिस चूँकि भूक-हड़ताल का था, चुनाँचे यूनियन की नज़र में वह चोटी का आदमी था। लेकिन उसे इससे दिलचस्पी न थी। उसे अपनी बीवी से मुहब्बत थी और वह उसे अकेला नहीं छोड़ सकता था।

वह नोटिस का आख़िरी दिन था। उस दिन भी अली ने बिशन से चन्द बेर लिए और सबकी तरफ़ पीठ करके खाने लगा। वह एक-एक बेर को आहिस्ता-आहिस्ता चबा-चबाकर खा रहा था, जब रहीम दूसरी दफ़ा उसके पास आया।

"कुछ रोटी बच गई है। खा लो।" उसने रोटी बढ़ाते हुए कहा।

अली ने ख़ाली-ख़ाली नज़रें उस पर जमाईं और बेर की गुठली को बार-बार चबाने लगा।

"यहाँ बैठो।" आख़िर उसने कहा, "मैं ज़रा देर के लिए बाहर जा रहा हूँ।"

रहीम ने ख़ुशी से उसकी जगह बैठना मंज़ूर कर लिया और वह उठकर बाहर निकल आया। बाहर लू चल रही थी।

1. कृपादृष्टि।

कुछ देर तक वह दरवाज़े पर रुका, आँखें सुकेड़े, धूप की सफ़ेद जलती हुई चादर को देखता रहा, जो मैदान में बिछी थी। फिर उसने आहिस्ता-आहिस्ता मैदान पार किया और 'वर्कशॉप' के सामने जा रुका। अन्दर ख़रादिए और तरखान और पेंटर और सारे 'हैल्पर' खाना ख़त्म करके दायरे में खड़े सिगरेट पी रहे थे। आनेवाला तूफ़ान सबके सिर पर सवार था, लेकिन सुबह से किसी ने उसका ज़िक्र न किया था। चन्द महीनों से उससे मुतअल्लिक़ तमाम सरगर्मी उनकी ज़िन्दगी का हिस्सा बन चुकी थी, लेकिन आज जबकि वक़्त सिर पर आन पहुँचा था, वह उससे कतरा रहे थे। उसे भुलाने के लिए इधर-उधर की छोटी-छोटी बातें कर रहे थे और बिला-वजह ज़ोर-ज़ोर से हँस रहे थे। अली को देखकर एक साथ सबके ज़ेहन में वह शदीद ख़याल उभर आया। वह फ़ैक्टरी भर में भूक-हड़ताल के लिए मौज़ूँ-तरीन[1] शख़्स था और बहुत ग़रीब। इसके बावजूद किसी को हड़ताल में उसके बैठने के मुतअल्लिक़ यक़ीन न था। किसी को किसी के मुतअल्लिक़ यक़ीन न था। यह इस फ़ैक्टरी की पहली हड़ताल थी।

अली उनके पास जा खड़ा हुआ। हैड फ़िटर ने अली की तरफ़ देखते हुए बात जारी रखी : "तुम नहीं जानते, साईं, पर ये सब जानते हैं। ये यहाँ काम करते हैं। यह सारा उस गंजे का क़ुसूर था (उसने फ़ोरमैन की ख़ाली कुर्सी की तरफ़ इशारा किया) सरासर[2]। उसके गोरों की माँ...कहता है, गोरों से काम सीखकर आया है। क्यों ओए, बोलते क्यों नहीं?"

"सरासर उस्ताद, सरासर।" एक फ़िटर ने हाथ फैलाकर यक़ीन

1. सबसे ज़्यादा योग्य, 2. नितान्त।

दिलाया, "यह तो सब मानते हैं। बेचारा करीम। क्या जीदार मर्द था। टूटी हुई टाँग के साथ बातें करता रहा। हाय..."

"और आख़िरी दम तक कहता रहा कि उसको कुछ भी नहीं हुआ।" एक ख़रादिए ने कहा।

"उस वक़्त, अल्लाह गवाह है, मैंने गंजे को एक तरफ़ ले जाकर कान में कहा कि यह गाँठ जो वह दे रहा है, पक्की नहीं। एक टन से ज़्यादा वज़न के लिए यह गाँठ काम दे ही नहीं सकती। पर उसने इस कान से सुना, उससे उड़ा दिया। और तड़ाख़...सबने तो देखा ही कि क्या हुआ। अब?"

"उसकी भी टाँग तोड़ देनी चाहिए।" किसी ने तजवीज़ किया। सब हँसने लगे।

"सुअर!" हैड फ़िटर ग़ुर्राया, "उसको जेल में फेंका जा सकता था। लेकिन अफ़सर? जिसको चाहें बचा लें, जिसको चाहें, भूका मार दें। कौन सुनता है?"

'इलेक्ट्रिक शॉप' से चन्द इलेक्ट्रीशियन निकलकर आ खड़े हुए और सिगरेट पीने लगे। अब हैड फ़िटर अपना और गंजे फ़ोरमैन का मुक़ाबला कर रहा था और काम में अपनी अच्छाई साबित करने की कोशिश कर रहा था। फ़ोरमैन के ख़िलाफ़ तो सब ख़ुशी से सुनते रहे, लेकिन अब उनकी दिलचस्पी ख़त्म हो गई, क्योंकि उनमें ज़्यादातर कारीगर थे और हैड फ़िटर की अच्छाई मानने पर तैयार न थे। चुनाँचे सब आपस में बातें करने लगे, जिससे हैड फ़िटर को ग़ुस्सा आ गया और चिल्ला-चिल्लाकर बोलने लगा। कुछ देर के बाद

अगर कोई वहाँ से गुज़रता, तो देखता कि मुक़र्रिर[1] और सामिईन[2] में गला फाड़ने का मुक़ाबला हो रहा है। जल्द ही दोपहर के वक़्फ़े के ख़ातिमे का भोंपू हुआ और वे वहाँ से तितर-बितर होने लगे। अली को जाते हुए देखकर हैड फ़िटर ने बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रखा, "साईं, तुम दिल से ग़रीब हो, मगर अब ज़्यादा अरसे ग़रीब नहीं रह सकते। बैठोगे? (हड़ताल में)" "पता नहीं।" अली ने कन्धे उचकाकर कहा और बाहर निकल आया। बाहर अभी तक लू चल रही थी।

उसने उस भयानक इमारत पर, जहाँ वह काम करता था, एक नज़र डाली और दूसरी तरफ़ चल पड़ा। एक और खुली जगह पार करने के बाद वह 'मोटर-वर्कशॉप' में निकल आया। वहाँ पर चन्द मैकेनिक एक ट्रक के खुले हुए इंजन पर झुके बातें कर रहे थे। उनके ग्रीस और तेल लगे चेहरों पर से सियाह पसीने के क़तरे इंजन में टपक रहे थे, और वे बिला-वजह इंजन में हाथ मार रहे थे। दो फ़िटर इंजन के नीचे सीधे लेटे गा रहे थे और ऊपरवालों से बातें कर रहे थे। मशीन उनके दरमियान कोई रुकावट न डाल रही थी। ऊपरवालों ने ख़ामोशी से सिर उठाकर अली को देखा। उसको महसूस हुआ कि वे लोग, जो सिर्फ़ उस इंजन की वजह से वहाँ पर मौजूद थे, असल में उससे इस क़दर अलग थे, कि उनको इस बदसूरत बिगड़ी हुई मशीन से कोई सरोकार न था और वे एक-दूसरे के लिए बे-हक़ीक़त थे, और इसके बावजूद वे सिर्फ़ उस मशीन की ख़ातिर जमा थे। अपने ख़याल के बेतुकेपन पर वह दिल में हँसा और थकी हुई, कड़ी, मुस्तक़िल चाल से वहाँ से गुज़र गया। आगे रेल की पटरियाँ थीं, जिन पर मालगाड़ी के चन्द ख़ाली डिब्बे इधर-उधर खड़े थे।

1. वक्ता, 2. श्रोतागण।

एक डिब्बे के साए में रुककर चन्द मिनट तक उस पर उँगलियाँ बजाने के बाद वह आगे चल पड़ा। 'लोडिंग प्लेटफ़ॉर्म' पर लम्बी मालगाड़ी खड़ी थी और उसमें चीख़ते-चिल्लाते हुए मज़दूर बोरियाँ लाद रहे थे। उसके पीछे बोरियाँ भरने की मशीनों की इमारत थी और सीमेंट की धुआँधार धूल में लिपटे हुए थे, जो गर्मी बढ़ा रही थी। इमारत के पीछे अली के दो पड़ोसी बिजली की ज़मीनदोज़[1] लाइन की मरम्मत करने की ख़ातिर खुदाई कर रहे थे। जब अली उनके पास रुका, तो वे कमर तक गहरे, ताज़ा खुदे हुए गढ़े में खड़े, कुहनियाँ ज़मीन पर टिकाए एक-दूसरे की कलाई मोड़ने की कोशिश कर रहे थे। थोड़ी देर तक ज़ोर लगाने के बाद उन्होंने हाथ छोड़ दिए। यूनुस अली को देखकर हँसा : "कहता है, छोटे सिरवाले मर्द को औरतें पसन्द नहीं करतीं। उसमें मर्दुमी[2] कम होती है। मैंने कहा, आओ तुम्हें मर्दुमी दिखाऊँ। मर्दों के ये तरीक़े हैं।" उसने पंजा फैलाया, "तुम्हारे सिर पर तो दो मन बाल और मन भर पगड़ी है, और जुएँ अलग..." उसने करम सिंह की पगड़ी में उँगली चुभोते हुए कहा। अली मुँह खोलकर हँसा और आगे चल पड़ा। ज़रा दूर पर चन्द बिजलीवाले साए में बैठे खुदाई ख़त्म होने का इन्तिज़ार कर रहे थे। आगे कोयले का गोदाम था जहाँ कोयला मालगाड़ियों पर से उतारा जा रहा था। सियाह काले मज़दूर और गधे कोयला ढो रहे थे। अली ने एक नौ-उम्र लड़के को देखा, जो एक मोटी-सी मूली खा रहा था और साथ-साथ गधे को हाँक रहा था। हर चन्द क़दम पर जब उसका गधा रुक जाता तो वह एक हाथ से उसकी पूँछ उठाता और मूली मुँह से निकालकर उसकी दुम के नीचे दे देता। गधा उछलकर चलने लगता। आगे वह नाली थी, जिससे फ़ैक्टरी का फ़ालतू पानी बाहर जाता था। नाली के किनारे-किनारे कोयला

1. भूमिगत, 2. पुरुषत्व।

ढोनेवाले वे मज़दूर, जिन्होंने अभी-अभी छुट्टी की थी, नंग-धड़ंग नहा रहे थे। उनके जिस्म कोयले के बने हुए दिखाई दे रहे थे, और वे सफ़ेद-सफ़ेद आँखें और दाँत निकाले बातें कर रहे थे, हँस रहे थे, खड़े होकर पेशाब कर रहे थे और बेशर्मी से बड़े-बड़े बालों में उँगलियाँ डाले खुजा रहे थे। अली ने हवा में गाली दी और नज़र चुराकर वहाँ से गुज़र गया।

39

चार बजेवाली शिफ़्ट ख़त्म हुई, तो सब मज़दूर काम छोड़कर बाहर निकल आए। अगली शिफ़्टवालों को दरवाज़े पर ही रोक लिया गया। मशीनें बहरहाल चलती रहीं, फ़ोरमैनों और सुपरवाइज़रों के सहारे, जिन्होंने भाग-दौड़कर काम सँभाल लिया था, या चन्द एक मज़दूर थे, जो टोडी बनकर मुंतज़िमीन[1] का साथ देने पर राज़ी हो गए थे।

गेट के बाहर लकड़ी के दो क्रेटों पर चढ़कर यूनियन के प्रेज़ीडेंट ने, जो शहर का एक मामूली वकील था, तक़रीर शुरू की : "मेहनतकशो! आख़िर वह वक़्त आ पहुँचा है, जब अपनी मेहनतों का पूरा-पूरा सिला[2] हासिल करने के लिए तुम्हें क़ुरबानी देनी होगी। आज तुम्हारी अपनी मेहनत, तुम्हारी मशक़्क़त तुम्हारा ख़ून माँगती है। आज तक तुमने अपनी मेहनत को अपना पसीना दिया है। आज तक तुम्हारे पट्ठों से निचुड़े हुए हज़ारों क़तरे इस ज़मीन में जज़्ब होते रहे हैं। आज अगर यह ज़मीन बोल सकती, तो तुम्हारे नाम पर और तुम्हारी मेहनत पर शाबाशी देती, लेकिन मेहनत के इन सारे सालों में न ज़मीन बोली और न हमारे मालिक सेराब[3] हुए। और

1. प्रबन्धकों, 2. फल, 3. तृप्त

इसके बावजूद यह बड़ी-बड़ी इमारतें और यह भारी मशीनरी हज़ारों मज़दूरों और हज़ारों गधों ने देखते-देखते खड़ी कर दी। मज़दूरों और गधों का पसीना एक जगह गिरा और हमारे मालिकों ने समझा कि इन दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं है और आज तक यही समझते आ रहे हैं, आज तक, मेरे मज़दूर हमवतनो। उस ज़मीन की तरह जिसमें तुम रहते हो, जिसमें तुम सोते-जागते और काम करते हो, जिसकी मिट्टी से तुम उठे हो और जिसकी ख़ुशबू से तुम इतनी अच्छी तरह वाक़िफ़ हो, आज तक उस ज़मीन की तरह तुम बेज़बान और मुसीबतज़दा रहे और अपने बेहतरीन साथी गधे की तरह बुद्धू रहे और इसके बावजूद तुमने बड़े-बड़े काम किए। तुमने हज़ारों मन वज़नी लोहे की मशीनरी कहाँ-से-कहाँ पहुँचा दी और एक नया शहर आबाद किया। इधर से तुमने ख़ुश्क बेकार पत्थर डाले, और उधर से सीमेंट निकाला। तुमने बंजर, बे-फल पत्थर में से सोना पैदा किया। फिर..." वह रुख़ फ़ेरकर दूसरे गिरोह से मुख़ातिब हुआ, "तुमने इधर से मेहनतकश किसानों की उगाई हुई कपास डाली और उधर से कपड़ा निकाला। वह ख़ूबसूरत, मुलाइम और मज़बूत कपड़ा, जिसने मंडियों में बहार लगा दी है, जिसने मालिकों के जिस्मों को ख़ुशनुमा बना दिया है, और तुम्हारे बच्चे आज तक गलियों में नंगे फिरते हैं और तुम्हारी बीवियों ने बरसों से नया लिबास नहीं देखा। क्या तुम्हारे बग़ैर यह सब कुछ किया जा सकता था? क्या अपनी सारी दौलत के बावजूद वे कपास के एक तार को भी कपड़े में तब्दील कर सकते थे? अगर कपास के एक ढेर को रुपयों के एक ढेर के साथ मिला दिया जाए, तो सिर्फ़ उसका वज़न बढ़ जाता है, और कुछ नहीं बनता..."

भीड़ में से कोई हँसा, जिस पर मुक़र्रिर ने ग़ुस्सैली नज़रों से उसकी

तरफ़ देखा, "तुम कहाँ से आए हो? अपनी ज़मीनें और मकान और मवेशी छोड़कर यहाँ जमा हुए हो। तुमने अपने पसीने, अपनी मेहनत और अपनी कारीगरी की बिना पर एक-दूसरे को जाना और एक-दूसरे के दर्द को पहचाना है। किसलिए? इसलिए कि तुम्हारे साथ और तुम्हारे बोझ ढोनेवाले जानवरों के साथ एक-सा सुलूक किया जाए? नहीं...आज वह अमर वक़्त आ गया है, जब बरसों की अन्धी और गूँगी मेहनत के बाद आख़िरकार तुमने महसूस किया है कि तुम इनसान हो कि तुम ज़मीन पर बसनेवाले सारे जानदारों में से बरतर हो, कि तुम बेहतर सुलूक के हक़दार हो। तुम सोचते और समझते हो, तुम्हें गेहूँ और चने की रोटी का फ़र्क़ मालूम है। तुम्हारे जिस्म नर्म और सख़्त कपड़े को अलग-अलग महसूस करते हैं, कि तुम्हारी आँखें सफ़ाई और गन्दगी को परखने के क़ाबिल हैं, कि तुम ख़ुशबुओं और ख़ूबसूरत चीज़ों को पसन्द करते हो, कि तुममें वह सारी ख़सूसियात[1] मौजूद हैं, जो तुम्हें जानवरों से अलग और अफ़ज़ल[2] बनाती हैं, लेकिन इस पुरानी हक़ीक़त और नई आगाही[3] को उन तक पहुँचाने के लिए तुम्हारे ख़ून की ज़रूरत है, क्योंकि अब तुम्हारा पसीना ख़त्म हो चुका है। इन मुर्दा इनसानी रूहों को हरकत में लाने के लिए तुम्हारा ख़ून चाहिए, और जब यह ख़त्म हो गया, तो तुम्हारी हड्डियों पर इस आगाही को क़ायम रखा जाएगा..."

मज़दूरों की भीड़ में से बिलबिलाहट उठी, जो आहिस्ता-आहिस्ता नारों में तब्दील हो गई। फिर उन्होंने एक के बाद दूसरे कई क़ौमी और मज़हबी क़िस्म के नारे लगाए, जिनका मौज़ूअ[4] से कोई तअल्लुक़ न था। इस मौक़े पर कपड़े की मिल से औरतों का जुलूस आकर उनके क़रीब रुक गया। यह सब मज़दूर औरतें थीं, जो कपास

1. गुण, विशेषताएँ, 2. उत्तम, 3. जानकारी, ज्ञान, 4. विषय।

से बिनौला अलग करने का काम करती थीं। उनकी रहनुमाई एक गन्दुमी रंग की ढलती हुई उम्रवाली औरत कर रही थी, जो क़रीब से देखने पर तक़रीबन ख़ूबसूरत नज़र आती थी। उन्होंने सोंटियों पर रंग-बिरंगे कपड़ों के टुकड़े टाँगकर झंडे बना रखे थे, जिनसे कुछ ज़ाहिर न होता था। जब वे नारे लगाती-लगाती उनके क़रीब आकर रुक गईं, तो मज़दूरों में जोश फैलने लगा। एक छोटा-सा कमज़ोर मज़दूर, जिसको कम लोग फ़ैक्टरी में जानते थे, छलाँग लगाकर क्रेट पर चढ़ा। प्रेज़ीडेंट कुछ देर तक सँभलने की कोशिश करता रहा फिर नीचे कूद गया। लोगों ने उस नौजवान के कमज़ोर जिस्म में से निकलती हुई ताक़तवर आवाज़ को हैरत से सुना : "भाइयो! हम ग़रीब और अनपढ़ लोग हैं, लेकिन काम करते हैं और हक़-हलाल[1] की रोज़ी कमाते हैं। हममें से ज़्यादातर कुन्द-ज़ेहन[2] भी होंगे, लेकिन हम काहिल[3] नहीं हैं। पिछले बरस हमने पाँच लाख गज़ कपड़ा बुना है। क्या हमें एक के बजाय दो डाँगरियाँ नहीं दी जा सकतीं? सब जानते हैं कि छह माह में एक डाँगरी का तार-तार अलग हो जाता है। कहते हैं कि दौलत के साथ अक़्ल भी आ जाती है। क्या वे नहीं जानते कि छह महीने में डाँगरी का फट जाना हमारी मेहनत की निशानी है। वे हमारे नंगे जिस्मों को क्यों नापसन्द नहीं करते? वे लोग, जो ख़ूबसूरत घरों में रहते हैं, और ख़ूबसूरत तस्वीरें दीवारें पर लटकाते हैं, हमारे सियाह, बदनुमा जिस्मों को क्यों नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। पिछले साल में हमने साठ हज़ार टन सीमेंट बनाया है, जिससे कम्पनी को दस लाख रुपए का फ़ायदा हुआ है। क्या हमारी मज़दूरी आठ आने रोज़ के हिसाब से भी नहीं बढ़ाई जा सकती? हम लाखों में देते और सिर्फ़ सैकड़ों में अपना हक़ माँगते हैं। हमें रहने के लिए मकान चाहिए। हमारे मकानों में पानी होना चाहिए,

1. विहित, 2. मन्दबुद्धि, 3. आलसी।

क्योंकि पानी के बग़ैर हम ज़िन्दा नहीं रह सकते। आँगन में एकाध पेड़ होना चाहिए, जिसकी छाँव में हम बैठ सकें। हमारे बीवी-बच्चों को सस्ते दामों कपड़ा मिलना चाहिए, ताकि वे साफ़-सुथरे रह सकें। क्या वे नहीं जानते कि हम मैले कपड़ों को उसी तरह नापसन्द करते हैं, जैसे वे करते हैं? हमारी तनख़्वाहों में इज़ाफ़ा होना चाहिए, ताकि हम ज़रा ज़्यादा आसानी के साथ रह सकें। हमारे घरों में बिजली लगनी चाहिए। कारख़ाने में हम दिन भर बिजली पैदा करते रहते हैं, और जब घरों को लौटते हैं, तो हमारी दीवारें अँधेरे में खड़ी होती हैं और तेल का धुआँ आँखों में भर जाता है। कैसी शर्म की बात है! हमें और हमारे बच्चों को मिल के दवाख़ाने से मुफ़्त मशविरा और दवा मिलनी चाहिए। हमारी छुट्टियों में इज़ाफ़ा होना चाहिए। मशीनों को भी तेल की ज़रूरत होती है? क्या हमें आराम की ज़रूरत नहीं? क्या हम इस थोड़ी-सी सहूलत के हक़दार नहीं हैं? क्या यह बहुत ज़्यादा है? हमने अट्ठाईस दिन तक नोटिस के जवाब का इन्तिज़ार किया है। अब इसकी गुंजाइश नहीं रही। आज तक हमने मालिकों के पेट के लिए मेहनत की है। आज हम अपने बच्चों के पेट के लिए काम शुरू करते हैं..."

हर तरफ़ से नारे बुलन्द होने लगे।

"वह...वह..." बिशन ने अली का बाज़ू खींचते हुए कहा, "मेरी माँ है।"

अली ने कुछ न सुना। वह ख़ला[1] में उस जगह को घूर रहा था, जहाँ से कमज़ोर नौजवान छलाँग लगाकर ग़ायब हो चुका था। यूनियन प्रेज़ीडेंट की तैयारशुदा बुलन्द आहंग[2] तक़रीर के मुक़ाबले में

1. शून्य, 2. ऊँची आवाज़।

उस नौजवान के सीधे-सादे अल्फ़ाज़ तीर की तरह उसके दिल को लगे थे। जब वह बोल रहा था, तो अली ने महसूस किया था कि प्रेज़ीडेंट की तक़रीर के मुक़ाबले में, जो कि उसके आलिम-फ़ाज़िल[1] दिमाग़ से निकली थी, ये अल्फ़ाज़ सीधे उस नौजवान के दिल से, सीधे उसकी ज़िन्दगी से निकलकर चले आ रहे थे, कि यह नौजवान मज़दूर उनका भाई था और सब कुछ जानता था। थोड़ी देर के बाद वह भी नारे लगानेवालों में शामिल हो गया।

फिर जाने कैसे हुआ कि थोड़ी-सी देर में अली ने अपने आपको फ़ैक्टरी के अन्दर पाया। उसे इतना याद रहा कि मालिकान के चन्द नुमाइन्दे आए और गेट के पास खड़े हुए मज़दूरों को वरग़लाने लगे और वह जो पहले ही दुविधा में था, उनके आगे लगकर अन्दर चला गया। जलसेवालों को जब पता चला, तो गेट बन्द हो चुका था। वे सब पलटकर गेट पर जमा हो गए और ग़ुस्सैली आवाज़ों से उन्हें वापस बुलाने लगे। कुछ एक ने 'टोडी...टोडी...' की आवाज़ें भी लगाईं। बिशन, जो अन्दर चला आया था, अली के पास से निकल भागा और देखते-देखते लपककर गेट पर जा चढ़ा और बाहर कूद गया। बाहरवाले मज़दूरों ने उसे हाथों-थाम लिया। बाक़ियों को अन्दर की तरफ़ जाते हुए देखकर वे गालियाँ देने लगे। अली ने औरतों के जुलूसवाली लीडर को देखा, जो गेट की सलाख़ों में से नाक निकाले उसका मुँह चिड़ा रही थी और 'टोडी-टोडी' की रट लगाए हुए थी। अली ने ऊँची आवाज़ से गाली दी और मुक्का हवा में लहराया। वह उस औरत को जानता था। वह शीला माथुर नाम की हिन्दू औरत थी और अब एक मुसलमान के साथ रहती थी, जिसने उसका नाम बानो रख दिया था।

---

1. विद्वान।

रात होने तक कई बार उसने घर जाने की इजाज़त चाही, लेकिन उसे बताया गया कि जो लोग अन्दर आ चुके थे, अब हड़ताल ख़त्म होने तक बाहर नहीं जा सकते थे, और उनके खाने-पीने और सोने-जागने का बन्दोबस्त अन्दर ही कर दिया गया था। इसके अलावा उसको यक़ीन दिलाया गया कि वे, जो हड़ताल में शामिल नहीं थे, मालिकान की नज़र में ऊँची हैसियत रखते थे, चुनाँचे उनके घरवालों की देखभाल का ज़िम्मा मालिकान के सिर था और उसका मनचाहा इन्तिज़ाम कर दिया गया था, लेकिन आयशा बीमार थी और वह उसके पास जाना चाहता था, क्योंकि दो रोज़ पहले वह डॉक्टर से उसकी दवाई लेकर आया था, जो वह अपने-आप कभी न पीती थी, और अलावा और सब बातों के उसे अपनी बीवी से मुहब्बत थी। दो-एक बार उसने आप-से-आप बाहर जाने की कोशिश की, लेकिन गेट बन्द था और उस पर पुलिस के सिपाही तैनात किए गए थे, जिन्होंने उसे वापस भेज दिया था। अब रात पड़ रही थी और वह मायूस हो चुका था और अपनी कमअक़्ली पर पछता रहा था। उसे इस बात का भी पता था कि अगर उस वक़्त वह बाहर रह जाता, तो उसे ज़बरदस्ती पकड़कर भूक हड़ताल करनेवालों की टोली में बिठा दिया जाता और वह दो-एक रोज़ में ही मर जाता। फ़ैक्टरी को बहरहाल हड़तालियों की हिम्मत पस्त करने की ख़ातिर चलते रहना था।

अब रात पड़ चुकी थी और कुल सत्रह आदमी फ़ैक्टरी को चला रहे थे। तीन इंजीनियर, पाँच फ़ोरमैन, चार सुपरवाइज़र, दो फ़िटर, और तीन मज़दूर। इंजीनियर और फ़ोरमैन तो मज़दूर-यूनियन में शामिल न थे, चुनाँचे बड़े साफ़ ज़मीर के साथ काम कर रहे थे कि यह उनकी ड्यूटी थी। बाक़ी सुपरवाइज़र और फ़िटर और मज़दूर उन लोगों में से थे, जिन्होंने अपनी मर्ज़ी से यूनियन का साथ छोड़कर

फ़ैक्टरी में काम करने को चुना था।

अली की ड्यूटी मिल-हाउस में थी। यहाँ पर दो मिलें थीं। एक मिल में पत्थर पीसा जाता था। दूसरी मिल मशीन वही पिसा हुआ पत्थर जलाए जाने के बाद जब 'क्लिंकर' बनता था, तो पीसकर सीमेंट बनाया जाता था। दोनों मिलें सिर्फ़ पीसने का काम करती थीं। जलाने के लिए एक अलग प्लांट था, जो 'किल्न्' (भट्टी) कहलाता था। मिल हाउस में पाँच आदमी एक वक़्त में काम करते थे, मगर उस वक़्त सिर्फ़ दो आदमी थे। एक फ़ोरमैन था, जो भाग-दौड़कर मिलों को चला रहा था और अली था, जो उनके 'बेयरिंग' का तेल वग़ैरह देख रहा था और छोटे-छोटे पम्पों को, जिनके ज़रिए पिसा हुआ माल अगली मंज़िल तक पम्प किया जाता था, चला रहा था। काम बराए नाम ही था, क्योंकि तक़रीबन सारी मशीनरी अपने आप चलनेवाली थी, सिर्फ़ निगरानी की ज़रूरत थी। इसके अलावा फ़ोरमैन के पास चन्द एक दूसरे प्लांटों का छोटा-मोटा काम भी था। अली उस काम से बख़ूबी वाक़िफ़ था और आसानी से कर रहा था।

एक घंटे से उसका फ़ोरमैन ग़ायब था और वह दरवाज़े के साथ टेक लगाए खड़ा जागते रहने की कोशिश कर रहा था। रात आधी के क़रीब हो चली थी, लेकिन लू अभी तक चलनी बन्द न हुई थी और पसीना पानी की तरह निकल रहा था। मिलें मुस्तक़िल चल रही थीं और उनकी गड़गड़ाहट, जो पहले पहल आनेवाले के दिल में जोश और बदन में चुस्ती पैदा करती है, वक़्त के गुज़रने के साथ-साथ भारी नींद और उदासी और कड़ी यकसानियत[1] में तब्दील हो जाती थी। जागने की कोशिश में वह सिर उठाकर बिजली की रौशनियों को देखने लगा।

1. नीरसता।

उसके सामने दूर और क़रीब इक्का-दुक्का जाने-पहचाने लोग दिखावटी जोश और फुर्ती के साथ इधर-उधर गुज़र रहे थे। उन सबके चेहरे ज़्यादा देर तक काम करते रहने की वजह से तमतमाए हुए थे और वे ऊँची आवाज़ों में बातें कर रहे थे। बरसों की पुरानी जानी-पहचानी फ़ैक्टरी आज एक अजीबोग़रीब अनोखी दुनिया में तब्दील हो चुकी थी। एक नौजवान इंजीनियर क्रेन को चला रहा था। क्रेन...जिसको अली का एक साथी चलाया करता था, जिसको वह अक्सर सीटी मार-मारकर मिलों में माल डालने की हिदायात दिया करता था। नौजवान इंजीनियर को क्रेन चलाने का मामूली तजर्बा था और उसे काफ़ी दिक़्क़त हो रही थी और अली, कि उसे नापसन्द करता था, यह देखकर अजीब-सा इत्मीनान महसूस कर रहा था। उसी इत्मीनान के एहसास को मुकम्मल करने के लिए अली अब तक तीन बार जाकर मुँह में उँगलियाँ डालकर सीटियाँ बजा-बजाकर और बाज़ू हवा में लहरा-लहराकर उसको मिलों में माल डालने की हिदायात दे चुका था। एक बार क्रेन के शीशे में से इंजीनियर का ग़ुस्से से तमतमाता हुआ चेहरा देखकर वह ज़ब्त न कर सका और भागता हुआ अपनी जगह पर आकर हँसी के मारे दोहरा हो गया। एक इंजीनियर और दो फ़ोरमैन 'किल्न्' को चला रहे थे। कोयला, जो कि 'किल्न्' में जलाया जाता था, कहीं से बाहर निकल-निकलकर उड़ रहा था, और तीनों 'किल्न्' चलानेवाले सिर से पाँव तक काले हो रहे थे। दो घंटे हुए, उसी 'किल्न्' के प्लेटफ़ॉर्म पर जमा होकर उन सबने रात का खाना खाया था, जो कैंटीन से पककर आया था और सूजी के तर-ब-तर हलवे और भुने हुए गोश्त पर मुश्तमिल था। उस खाने में सारे सुपरवाइज़र, फ़ोरमैन, इंजीनियर, और अली के अलावा चीफ़ इंजीनियर और मिल का मालिक भी आकर शामिल हुए थे और उनके साथ ऐसे बातें कर रहे थे, जैसे पुराने दोस्तों के

साथ की जाती हैं। दो-चार लुक़्मे लेने के बाद मिल के मालिक ने बेतकल्लुफ़ी से अली के कन्धे पर हाथ रखकर कहा था, "शाबाश नौजवान! तुम हैड-फ़िटर की असामी के क़ाबिल हो। क्या नाम है तुम्हारा?" ज़िन्दगी में पहली बार अली से मिल के मालिक ने बात की थी। उसके सारे बदन में अजीब-सी सनसनी दौड़ गई और अगले कुछ घंटों के लिए वह अपनी बीवी को क़तई तौर पर भूल गया। उसके बाद मालिक ने दुबले-पतले कमज़ोर चेहरेवाले सुपरवाइज़र सलीम से उसका नाम पूछा, और उसे बताया कि उसने आज सबसे ज़्यादा काम किया था और यह कि उसे तो जनरल फ़ोरमैन होना चाहिए। मालिक की तरफ़ से इतना साफ़ इशारा तरक़्क़ी मिलने के सिलसिले में काफ़ी से ज़्यादा था। आनेवाले अच्छे दिनों के ख़यालों के अचानक रश की वजह से सलीम शरमाकर हँसा और जल्दी-जल्दी हलवा खाने लगा और जनरल फ़ोरमैन का मुँह लटक गया और उसकी ज़बान पर पड़ा हुआ हलवा सबको नज़र आने लगा, जिस पर अंग्रेज़ इंजीनियर ने नज़रें फेरकर बुरा-सा मुँह बनाया। उसके बाद जल्द ही मालिक और चीफ़ इंजीनियर ने बड़ी अपनाइयत के साथ उन्हें बताया कि वे यूनियन के लीडरों के साथ बातचीत कर रहे हैं और उम्मीद है और जल्द ही कोई फ़ैसला हो जाएगा। जाते-जाते मालिक ने रुककर पचासवीं बार दुहराया, "धुआँ निकलता रहे। शाबाश! धुआँ बन्द न हो।"

उनके जाने के बाद बाक़ियों ने आपस में बिलकुल पुराने साथियों की तरह बातें कीं। एक दूसरे को काम के मुतअल्लिक़ हिदायात दीं और अपनी जगह वापस जाने से पेश्तर हँसी-मज़ाक़ भी किया। जब वह मिल हाउस की तरफ़ वापस आ रहा था, तो अली का दिल उन सब फ़ोरमैनों और इंजीनियरों की तरफ़ से, जिनसे वह हमेशा

नफ़रत करता आया था, मुकम्मल तौर पर साफ़ हो चुका था, और मिल के मालिक के लिए तो उसके दिल में ऐसे मुहब्बत के जज़्बात मौजें मार रहे थे कि अगर मौक़ा होता, तो वे बे-सोचे-समझे उस पर फ़िदा हो जाता। अपनी जगह पर पहुँचकर उसने सारी मिलों का चक्कर लगाया और दिल में हड़तालियों को कोसता और उनकी नाकामी की दुआएँ माँगता रहा।

लेकिन अब रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी, और वह इस सारे क़िस्से से उकताता जा रहा था। सामने वही समाँ था : फुर्ती से आते-जाते हुए इक्का-दुक्का लोग, जो एक प्लांट से दूसरे प्लांट को जा रहे थे। बीच-बीच में पुलिस के सिपाही, जो मुँह उठाए ग़त कर रहे थे। तेज़ी से कार पर गुज़रता हुआ चीफ़ इंजीनियर, वे लोग, जिन्होंने कभी यह छोटे-छोटे (मगर बहुत ज़रूरी) हाथ से काम करनेवाले काम न किए थे, अब कर रहे थे। बिलकुल उसी तरह, जैसे वह कर रहा था, करता आया था। वे लोग, जो कभी रातों को फ़ैक्टरी में न आए थे, जो इतने दूर, इतने ऊँचे, इतने बड़े नज़र आते थे, अब उसके साथ मिल-जुलकर काम कर रहे थे, गप्पें मार रहे थे, खाना खा रहे थे, उसकी सीटी की आवाज़ पर चौंक उठते थे और उसकी हिदायात पर अमल कर रहे थे। शुरू रात में यह सब बातें उसे बड़ी सनसनीख़ेज़ मालूम हुई थीं। यह बिलकुल नया तजर्बा था। फ़ैक्टरी पर एक बेहद अनोखा, अजीबोग़रीब, तहलका-ख़ेज़ समाँ छाया हुआ था, जैसे मेलों पर जानेवाली रात में हुआ करता है, मसनूई[1], फ़िलवक़्ती ख़ुशी[2] और जोशो-ख़रोश का, मिल-जुलकर उठने-बैठने का, शादी-ब्याहोंवाली रातों का, एक अज़ीम और वसीअ[3] भाईचारे का (हालाँकि वे कुल तेरह आदमी थे)...शुरू में, जिन मशीनों के

1. कृत्रिम, 2. क्षणिक प्रसन्नता, 3. व्यापक।

दरमियान अकेले फिरते हुए उसे अज़ीम मिल्कीयत, आज़ादी और क़ुव्वत का एहसास हुआ था। रात के बढ़ने के साथ-साथ उन्हीं बड़ी-बड़ी, गड़गड़ाती हुई मशीनों के दरमियान खड़े-खड़े उसी शिद्दत के साथ वह एहसास ख़ौफ़नाक, खोखली तन्हाई और बेचैनी में तब्दील हो गया। चलती हुई मशीनों और इनसानों की आपसी दोस्ती की अजीब कहानी है। जब वह पहले-पहल उनके दरमियान पहुँचता है, तो उसकी सारी क़ुव्वतें कहीं दब जाती हैं, सिवाय सुनने की क़ुव्वत के, जो अकेली उनकी भयानक गड़गड़ाहट को जज़्ब करती है और इनसान की अपनी आवाज़ को कहीं दूर गुम कर देती है। इस चैलेंज को क़बूल करके इनसान जिबिल्ली[1] तौर पर मशीनों के मुक़ाबले में अपनी बरतरी[2] को साबित करने के लिए (या कम-से-कम उनकी बराबरी करने के लिए) जोशो-ख़रोश से काम शुरू कर देता है। फिर वक़्त गुज़रने के साथ-साथ आहिस्ता-आहिस्ता उसे मशीनों की माद्दी[3] बरतरी का एहसास होने लगता है। उनकी माद्दी बरतरी और उनकी सर्द बेहिसी[4] का और उनकी पागल कर देनेवाली यकसानियत का और उनकी पाबन्दी-ए-वक़्त का और उनकी इनसान दुश्मनी और उनकी पैदावारी क़ुव्वत[5] का और उनकी ला-तअल्लुक़ी[6] का और उनकी कमीनगी का, और इन सारे इन्किशाफ़ात[7] में से मशीनें एक बरतर दुश्मन की शक्ल में ज़ाहिर होती है। इस नई मायूसी में से एक नया एहसासे-तन्हाई जन्म लेता है और इनसान की अपनी अन्दरूनी खोई हुई आवाज़ उभरना शुरू होती है और उठती-उठती इतनी बुलन्द हो जाती है कि सारी मशीनों की आवाज़ को दबा देती है और इनसान को अचानक डरा देती है।

---

1. स्वाभाविक, 2. श्रेष्ठता, उच्चता, 3. भौतिक, 4. भावहीनता, 5. उत्पादन शक्ति, 6. असम्बद्धता, 7. रहस्योद्घाटन।

दरवाज़े के साथ खड़े-खड़े अली ने आँखें बन्द करके सोचा कि इस सारी दुनिया में उसका हाल पूछनेवाला कोई नहीं रहा, कि वह दूर-दूर तक भुला दिया गया है।

"सब ठीक है?"

उसने घबराकर आँखें खोल दीं, "सब ठीक है!" उसने मैकेनिकी तौर पर दुहराया।

"शाबाश!" फ़ोरमैन ने कहा।

"उस्ताद, मैं ज़रा...थोड़ी देर के लिए कैंटीन से चाय पी आऊँ?"

फ़ोरमैन ने उसे ख़ुशी से जाने की इजाज़त दे दी। मिल हाउस से निकलकर वह चार सौ फ़ुट लम्बी 'किल्न्' के साथ-साथ चलने लगा। मैदान के बीच में बिजली का फ़ोरमैन हाथ पीछे बाँधे खड़ा अहमक़ों की तरह मुँह उठाकर बिजली की रौशनियों को तक रहा था। एक सुपरवाइज़र भागता हुआ उसके पास से गुज़रा। एक कुत्ता आगे बढ़कर अली के पाँव में लोटने लगा। फिर वह चुप खड़ा रह गया।

चारों तरफ़ भागदौड़ मच गई। 'किल्न्' रुक गया था। चिमनी से धुआँ निकलना बन्द हो चुका था। धुआँ, जो बाहरवालों के लिए फ़ैक्टरी की ज़िन्दगी का वाहिद निशान था। उस एक धुएँ को जारी रखने के लिए यह सारी कोशिशें की गई थीं और वह अब थम चुका था।

'किल्न्' के सबसे गर्म हिस्से के नीचे बिजली की मोटर, जो 'किल्न्' को घुमाती थी, रुक गई थी। दो फ़ोरमैन और दो सुपरवाइज़र औज़ार उठाए भागते हुए मोटर के प्लेटफ़ॉर्म पर चढ़े और पिछले पाँव नीचे

उतर आए। वहाँ पर खड़ा न हुआ जा सकता था। उस जगह पर 'किल्न्' के अन्दर चौदह सौ डिग्री सेंटीग्रेड टेम्प्रेचर था। बाहर...मई के आख़िरी दिन थे। चन्द सैकेंड तक वे चारों नीचे खड़े ख़ाली-ख़ाली नज़रों से मुर्दा 'किल्न्' को देखते रहे। फिर चीफ़ इंजीनियर की कार आँधी की तरह आकर उनके पास रुकी। उसमें से कार के मालिक के साथ-साथ मिल का मालिक भी निकला। चीफ़ इंजीनियर ने एक पल के लिए रुककर ग़ुस्सैली नज़रों से चारों कारीगरों को देखा और मोटर की तरफ़ बढ़ा। उसके पीछे चारों कारीगर सीढ़ियाँ चढ़ गए। जल्द-जल्द मुआयना करके चीफ़ इंजीनियर अपनी ज़बान में गालियाँ बड़बड़ाता हुआ नीचे उतर आया। मामूली-सी ख़राबी थी। उसने मालिक को बताया। चन्द मिनटों का काम था, लेकिन वहाँ पर क़ियामत की गर्मी थी। दोनों ने कार के पास खड़े होकर चारों कारीगरों पर नज़र दौड़ाई। चीफ़ इंजीनियर ने धीरे-से गाली दी। जब मालिक की निगाह सलीम पर से गुज़री, तो उसने झपटकर फ़ोरमैन से औज़ार लिए और मोटर के पास जा पहुँचा। उसके पीछे-पीछे तीनों आदमी भी वहाँ पहुँच गए।

अब सलीम तेज़-तेज़ औज़ार चला रहा था। फ़ैक्टरी का मालिक माथे से पसीना पोंछता हुआ बार-बार चिमनी की तरफ़ देखता जा रहा था। सलीम के सिर पर बला की गर्मी थी और उसकी जिल्द जल रही थी। पसीना निकलना बन्द हो चुका था। फ़ोरमैन उसके सिर पर खड़े उसे मुख़्तलिफ़ हिदायतें देते और एक-एक करके औज़ार पकड़ाते जा रहे थे। मालिक की नज़रों और 'किल्न्' की गर्मी के नीचे सलीम के हाथ मशीन की तरह चल रहे थे और साँस धौंकनी की तरह चल रहा था। मालिक सोच रहा था कि 'किल्न्' का धुआँ बन्द होते देखकर यूनियनवालों ने सुलह की बातचीत बन्द कर दी

थी। दोबारा धुआँ निकलने लगे, तो शायद उनकी हिम्मतें पस्त हो जाएँ और वे फिर से उसे जारी कर दें। उसने एक सुपरवाइज़र को सन की बोरी भिगोकर लाने के लिए दौड़ा दिया था, ताकि वह काम करनेवाले शख़्स के सिर पर रख दी जाए, जिससे कुछ बचाव हो सके। जब वह सुपरवाइज़र गीली बोरी लेकर सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, तो सलीम ने अचानक रुककर पेट पर हाथ रखा और ज़मीन से जा लगा।

उसे उठाकर नीचे लाया गया और चीफ़ इंजीनियर लगातार गालियाँ बड़बड़ाता हुआ अपनी कार में डालकर फ़ैक्टरी की डिस्पेंसरी की तरफ़ ले गया। उसकी जगह एक फ़ोरमैन ने ले ली और चन्द मिनट के अन्दर-अन्दर काम ख़त्म करके 'किल्न्' चला दिया गया। मालिक ने इत्मीनान का लम्बा साँस लिया और उसके चेहरे पर मुस्कराहट बिखर गई। वहीं खड़े-खड़े उसने उन तीनों के कन्धों पर ख़ुशी के धप लगाए और उन्हें मुबारकबाद देता और हँसता हुआ बाहर चला गया।

'किल्न्' के पीअर (PIER) की ओट में खड़े-खड़े अली ने सलीम को, जब वह उसे कार में लाद रहे थे, साफ़तौर पर मरते हुए देखा और कैंटीन की तरफ़ चल पड़ा। कैंटीन में वह देर तक आगे रखी हुई चाय को पीने का इरादा करता रहा, फिर उसे उसी तरह छोड़कर चला आया। गेट की तरफ़ से हड़तालियों के हलके-हलके नारों की आवाज़ें आ रही थीं। मई का आसमान साफ़ और रौशन था और चिमनी का धुआँ चाँद के सामने से गुज़र रहा था। उसने चीफ़ इंजीनियर की कार को आकर रुकते, फ़ैक्टरी के मालिक को निकलकर 'किल्न्' के प्लेटफ़ॉर्म पर चढ़ते, 'किल्न्' चलाते हुए फ़ोरमैनों और इंजीनियरों से दो मिनट तक बातें करते और फिर

उसकी पीठ ठोंककर क़हक़हा लगाते और जाते हुए देखा और वहीं खड़ा रहा। सामने 'किल्न्' की मोटर थी, जिसको बहुत अच्छे तरीक़े से ठीक कर दिया गया था और जो अब बख़ूबी चल रही थी। उसे ठीक करनेवाले फ़ोरमैन फ़ख़्र से अकड़-अकड़कर मालिक से बातें कर रहे थे और मालिक उनकी कामयाबी पर इत्मीनान से मुस्करा रहा था और धुएँ की तरफ़ देख रहा था। बाक़ी सारे फ़ोरमैन और इंजीनियर भी धुएँ की तरफ़ देख रहे थे और सब अपनी कामयाबी पर मुकम्मल तौर पर ख़ुश थे। गेट के बाहर हड़ताली भी धुएँ की तरफ़ देख रहे थे और मायूसी से नारे लगा रहे थे। सिर्फ़ सलीम वहाँ नहीं था। उसे भुला दिया गया था। वह जो टी.बी. का मरीज़ होने के बावजूद बड़ा उम्दा कारीगर था।

अचानक वहाँ खड़े-खड़े अली के गँवार ज़ेहन ने अजीबोग़रीब तरीक़े से काम करना शुरू कर दिया। उसने ऐसा ख़याली मंज़र देखा, जो इस तरह के ग़ैर-तर्बियत-याफ़्ता[1] ज़ेहन उम्र भर में एकाध मर्तबा ही देखते हैं। उस मंज़र में यह सब कुछ शामिल था: बहुत अच्छी तरह से चलती हुई बिजली की मोटर, बड़ी ख़ामोशी और सफ़ाई के साथ घूमती हुई 'किल्न्', शोर मचाकर चलती हुई मशीन, चाँद के सामने से गुज़रता हुआ चिमनी का धुआँ, बार-बार माथे से पसीना पोंछता हुआ और फ़तहमन्दी लगाता हुआ सियाह-फ़ाम[2] आदमी, ग़ैर-ज़बान में कोसने देता हुआ सफ़ेद-फ़ाम आदमी, फ़ख़्र से अकड़-अकड़कर बातें करते और सफ़ेद-सफ़ेद दाँत निकालकर हँसते हुए कई आदमी... ठंडी, ठोस, लाइक़[3] और लातअल्लुक़ मशीनें; ठंडे, ठोस, लाइक़ और लातअल्लुक़ इनसान...उसने खोजती हुई नज़रों से चारों तरफ़ देखा। वह ख़ुद था? वह ख़ुद? उसने सोचा, "मैं इसमें कहाँ आता

1. अप्रशिक्षित, 2. काले रंग का, 3. योग्य।

हूँ?" उसने ऊँची आवाज़ में कहा।

वह आहिस्ता-आहिस्ता गेट की तरफ़ चल पड़ा। अभी वह गेट से चन्द क़दम के फ़ासिले पर था कि बाहर से शोर उठा। फिर अचानक गेट खुल गया और हड़ताली नारे लगाते हुए अन्दर दाख़िल होना शुरू हुए। जुलूस के आगे-आगे फ़ैक्टरी का मालिक, चीफ़ इंजीनियर और यूनियन के प्रेज़ीडेंट चल रहे थे। तीनों के गलों में हार पड़े हुए थे और मज़दूर तीनों का नाम ले-लेकर ज़िन्दाबाद के नारे लगा रहे थे। अली अपनी मख़सूस थकी हुई, मुस्तक़िल चाल से उनके पास से गुज़रता गया। जुलूस के बीच में किसी ने तन्ज़ भरे लहजे में कहा, "साईं टोडी।" एक नफ़रत से भरा क़हक़हा बुलन्द हुआ। जुलूस के आख़ीर में किसी ने रुककर उसके कन्धे पर हाथ रखा : "साईं, तुम दिल से ग़रीब हो, पर अब ज़्यादा देर तक ग़रीब नहीं रह सकते। हमारी कुछ शर्तें मान ली गई हैं। हमारे साथ आओ। हम जानते हैं, वे तुम्हें खींचकर अन्दर ले गए थे। तुम्हारा कोई क़ुसूर न था।" उसने अजनबी, अनजानी नज़रों से मुख़ातिब को देखकर धीरे से कहा, "मैं इसमें कहाँ आता हूँ?" और आगे चल पड़ा।

अपने घर के दरवाज़े पर उसने मुड़कर एक थकी हुई निगाह फ़ैक्टरी पर डाली। लोग अपनी-अपनी जगहों पर पहुँच चुके थे। चिमनी का धुआँ चमकते आसमान पर लम्बी सफ़ेद लकीर बनाता हुआ पच्छिम की तरफ़ जा रहा था। मई के आख़िर की रातें गर्म और ख़ामोश थीं।

40

आम सतह पर ज़िन्दगी जिस तेज़ी और शिद्दत के साथ अपनी तरफ़

खींचती है, उसी तेज़ी और शिद्दत के साथ मायूस भी करती है। ज़िन्दगी एक अज़ीम और मुसलसल लालच है, और हर छोटे-बड़े लालच की तरह इनसानों पर ख़ौफ़नाक पाबन्दियाँ लगाती है और फिर एकदम अपनी कशिश खो देती है। यही वजह है कि हम जिस आसानी और तेज़ी से उसकी तरफ़ झुकते हैं, उसी आसानी के साथ उसे बुरा-भला कहने पर भी तैयार हो जाते हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि कुछ लोग अपनी कोशिश से एक बेकार तजर्बे में दाख़िल होते हैं और अपनी कोशिश से ही, मायूस होकर या महज़ उकताकर, बाहर निकल आते हैं (महज़ एक दूसरे बेकार तजर्बे में दाख़िल होने के लिए) और कुछ, जिनकी बहुत बड़ी अक्सरियत[1] है, ख़ामोश रज़ामन्दी के साथ रोज़-ब-रोज़, लम्हा-ब-लम्हा, रहे चले जाते हैं, और कभी-कभार जब शदीद ज़ेहनी और रूहानी कर्ब[2] की वजह से ठिठक जाते हैं, तो यह कहकर अपने आपको तसल्ली देने की कोशिश करते हैं कि मुख़्तलिफ़ क़िस्म के तजर्बात की बदौलत उन्होंने अपनी अक़्ल और दानिश[3] में बेश-बहा इज़ाफ़े[4] किए हैं। हममें से बहुत कम कभी इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि वह गूँगी रज़ामन्दी का रवैया एक बीमारी है, जिसने हम सबको अपनी लपेट में ले रखा है और कि इस बीमारी का नाम है "काहिलियत,"[5] दूसरे लफ़्ज़ों में उसे साफ़-साफ़ इनसानी बेअक़्ली भी कह सकते हैं।

हमारे दूसरे ला-हासिल जज़्बों[1] की तरह दुनियावी अक़्ल और दानिश भी बेहद थका देनेवाली शै है।

रौशन महल के पूरबी हिस्से में, जिसमें बैठक, सोने का कमरा और एक स्टडी शामिल थी, नईम और अज़रा रहते थे। रौशन महल

1. बहुसंख्या, 2. मानसिक और आत्मिक दुख, 3. बुद्धिमानी, 4. अमूल्य वृद्धि, 5. आलस्य, 6. निष्फल भावनाओं।

के नौकर-चाकर ही उनकी ख़िदमत करते थे। पार्लियामेंट हाउस से आने के बाद नईम ज़्यादातर वक़्त स्टडी में गुज़ारता। अज़रा उसके प्रोग्राम में कभी मुख़िल[1] न होती थी। पिछले चन्द बरस से वह इन्तिहाई सुकून और क़नाअत[2] के साथ ज़िन्दा थी और नईम के अलावा रौशन महल और अपने इर्द-गिर्द ज़िन्दगी की हर बात में बेहद लगन और दिलचस्पी के साथ हिस्सा ले रही थी। इस दौरान में उसे देखने पर आसानी के साथ कहा जा सकता था कि अधेड़ उम्र की यह ख़ूबसूरत, सेहतमन्द औरत अपने तब्क़े की ख़ास-उल-ख़ास नुमाइन्दा[3] थी और ज़िन्दगी में उसने मुहब्बत, नेकी और मेहरबानी के अलावा कुछ नहीं देखा। इस क़दर हैरतअंगेज़ सलाहियत उसमें वक़्त के सदमों को बरदाश्त और नज़रअन्दाज़ कर देने की थी।

नईम विज़ारते-तालीम[4] में अंडर पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी था। इस उहदे पर वह क्यों कर मामूर[5] हुआ था, ठीक तौर पर इसका किसी को पता न था। बहरहाल, यह सब जानते थे कि उसमें रौशन आग़ा के ज़ाती सियासी रुसूख़[6] का बड़ा हिस्सा था। दफ़्तरी काम का उसको कोई तजर्बा न था, चुनाँचे शुरू-शुरू में काफ़ी मेहनत से उसे काम सीखना पड़ा। यहाँ तक कि आहिस्ता-आहिस्ता वह इस क़ाबिल हो गया कि दिन भर का काम वक़्ते-मुक़र्ररा के अन्दर ख़त्म कर लेता। इससे बहरहाल उसे कोई तसल्ली न हुई और उस काम में वह अपने लिए कोई दिलचस्पी पैदा न कर सका। सबसे ज़्यादा एहसासे-नाकामी उसे यह था कि बावजूद हज़ार कोशिश के अपनी शख़्सियत में वह भारी-भरकम, क़नाअत, शाइस्तगी, मक्कारी, ख़ुदगर्ज़ी, और बेगर्ज़ी का मिला-जुला अन्दाज़ पैदा न कर सका, जो अक्सर पहले और

---

1. बाधक, 2. भाग्यतुष्टि, 3. मुख्य प्रतिनिधि, 4. शिक्षा मन्त्रालय, 5. नियुक्त, 6. व्यक्तिगत राजनैतिक मेलजोल।

दूसरे दर्जे के सरकारी अहलकारों में पाया जाता है। अब आ के पहली मर्तबा शिद्दत के साथ उसे एहसास हुआ था कि अव्वल और आख़िर वह किसान था और किसान का बेटा था, और अपने पाँव और ज़मीनों की तरफ़ लौट जाने की ख़्वाहिश ने उसके अन्दर मुस्तक़िल ख़ालिश की सूरत इख़्तियार कर ली थी। नई शख़्सियत को अपनाने की कोशिश में उसने अपनी क़ुदरती शख़्सियत भी खो दी थी, और अजीब मज़्हकाख़ेज़[1] किरदार बनकर रह गया था। उसका चेहरा भोले-भाले देहातियों की तरह बे-तास्सुर[2] और सेहतमन्द था और आँखों से सिवाय बेकसी और बेवक़ूफ़ी के कुछ ज़ाहिर न होता था, जैसे आम मवेशियों की आँखें होती हैं। उस ज़माने में तेज़ी से सफ़ेद होते हुए सिर और सीधे, मज़बूत, जिस्मवाले उस शख़्स का उम्दा लिबास, ग़ैर-मुतवाज़िन[3] चाल-ढाल, बेवक़ूफ़ों का-सा चेहरा और काम करने का गूँगा, बे-असर रवैया देखनेवाले के दिल में रहम के जज़्बात पैदा करता था। यूँ उसकी हालत कुछ ऐसी क़ाबिले-रहम न थी।

घर में सिवाय पढ़ने के उसे कोई काम न था। उम्र भर का बाग़बानी का शौक़ आहिस्ता-आहिस्ता बिलकुल ख़त्म हो चुका था। हालाँकि अज़रा अब भी उसी जोशो-ख़रोश से उसे अपने लगाए हुए पौदे दिखाती और क्यारियाँ, जो उसने तैयार की होतीं। और वह उसके साथ उसी बेकसी और वफ़ादारी के साथ फिरता, जिस तरह दफ़्तर में काम किया करता था। लेकिन सारे दिन में असल फ़राग़त[4] और आसूदगी वह उस वक़्त महसूस करता, जब अपने पढ़ने के कमरे में बन्द होकर किताबें टटोलना शुरू करता। उसकी लाइब्रेरी में उर्दू और अंग्रेज़ी ज़बान की कई सौ किताबें थीं, जिसके बनाने में उससे

1. हास्यास्पद, 2. प्रभावहीन, 3. असन्तुलित, 4. फ़ुरसत।

ज़्यादा अज़रा ने दिलचस्पी ली थी। ख़ुद अज़रा को पढ़ने की न फ़ुरसत थी (कि रोज़मर्रा के छोटे-छोटे कामों में वह इस दर्जा डूबी रहती थी) न दिलचस्पी, लेकिन नईम की ख़ातिर उसने अपने मुक़र्ररा वज़ीफ़े की मदद से, जो उसे रौशन आग़ा की तरफ़ से मिलता था, हर क़िस्म की किताबें फ़राहम की थीं। लम्बी बीमारी के दौरान नईम को जो बहुत ज़्यादा सोने की आदत पड़ चुकी थी, उससे छुटकारा पाने में उसे काफ़ी वक़्त लगा। अब वह बहुत कम सोता था। शाम से ही कमरे में बन्द होकर जो वह पढ़ना और तम्बाकू पीना शुरू करता तो रात का खाना भी अक्सर वहीं खाता और आधी रात गुज़रने पर सोने के लिए जाता। उसको अपने क़रीब लेटता हुआ महसूस करके बहुत थोड़ी देर के लिए अज़रा की आँख खुलती और एक हलकी-सी बासी ख़ुशी की लहर उसके बदन में दौड़ जाती, लेकिन जल्द ही वह सो जाती। क्योंकि जिस शख़्स से उसे गहरी मुहब्बत थी, उसकी तरफ़ से अब वह मुत्मइन और लापरवाह होती जा रही थी। बहुत कम ऐसा होता कि रात के उस समय उसकी नींद उड़ जाती और फिर वह सो न सकती। थोड़ी देर तक अँधेरे में इन्तिज़ार करते रहने के बाद वह एक सुबकी लेकर उसके साथ लिपट जाती और देर तक जागती रहती। कभी-कभी ऐसा भी होता कि सवेरे जब अज़रा उठती, तो नईम को कुर्सी पर सोया हुआ पाती। जगाने से पहले वह देर तक दरवाज़े में खड़ी मुहब्बत, उदासी और हलके-से ग़ुस्से और नफ़रत के साथ उसे देखती रहती। लेकिन नईम के लिए जो डॉक्टर की तरफ़ से सुबह-सवेरे लम्बी सैर और ख़ास क़िस्म की वर्ज़िश की हिदायात थीं, उन पर सख़्ती से अमल करती।

सुबह सवेरे सैर पर जानेवालों को सड़क के किनारे-किनारे नईम छड़ी के सहारे आहिस्ता-आहिस्ता लँगड़ाकर चलता हुआ मिलता।

उसका बाज़ू थामे साथ-साथ उसकी बीवी चल रही होती और नीची आवाज़ में कोई बात करती जाती। फिर जब रौशन महलवालों के जागने का वक़्त होता तो अक्सर जो मंज़र सबसे पहले देखते, वह नईम का होता, जो अज़रा की मदद से मुख़्तलिफ़ क़िस्म की वर्ज़िशें भौंडेपन के साथ कर रहा होता। सिवाय नजमी के, यह नज़्ज़ारा उनमें से किसी के लिए कुछ ज़्यादा ख़ुशकुन न था। उनमें से कुछ ने तो अब सुबह सवेरे पूरबी लॉन की तरफ़ देखना छोड़ दिया था।

पढ़ने का शौक़ नईम को उन दिनों हुआ, जब वह बीमार था और करने को उसके पास कुछ न था। सबसे पहले उसने मज़हबी किताबें पढ़ना शुरू कीं। क़ुआन के अलावा उसने बाइबल और गीता भी पढ़ी। फिर वह तारीख़[1] की तरफ़ मुतवज्जेह हुआ। यह तब्दीली किसी तयशुदा प्रोग्राम के तहत न हुई, बल्कि बिलकुल लाशुऊरी तौर पर अमल में आई। एक रोज़ लेटे-लेटे यूँ ही उसका जी चाहा कि तारीख़ की कोई किताब पढ़े। साथ ही उसने सोचा कि वह जो मज़हब का मुतालआ[2] इतने रोज़ से कर रहा था, उससे उसको क्या हासिल हुआ था। उसका ज़ेहन और रूह जिस दुख में मुब्तला थे, उसमें ज़र्रा बराबर कमी न हुई थी और इतना सारा वक़्त उसने महज़ बूढ़ा होने में बर्बाद कर दिया था। अज़ीम नुक़सान का एहसास, जो मुस्तक़िल उसके साथ लगा हुआ था, शदीद हो गया और उसने पिछली तमाम किताबों को बिलकुल भुला दिया। इस तरह थोड़े-थोड़े वक़्फ़े पर वह एक मौज़ूअ से मायूस होकर दूसरे की तरफ़ जाता रहा और पूरी तरह से कुछ भी न पढ़ सका। हिन्दोस्तान और बाक़ी दुनिया की तारीख़ पढ़ने के बाद उसे साइंस में दिलचस्पी पैदा हुई। उसमें उसे हिसाब, तबीआत[3] और साइंस की ताज़ातरीन ईजादात[4] ने

1. इतिहास, 2. अध्ययन, 3. भौतिकी, 4. आविष्कार।

बहुत मुतअस्सिर किया। कुछ अरसे तक वह बड़ी लगन से आसान ज़बान में लिखी हुई अंग्रेज़ी की किताबें पढ़ता रहा, लेकिन साइंस का मज़मून दिलचस्प और हैरतअंगेज़ होने के बावजूद उसे खोखला-सा लगा। जितना ज़्यादा वह उसे पढ़ता गया, उतना ही ज़्यादा उलझता गया। साइंस के पढ़ने ने उसमें एहसासे-कमतरी[1] पैदा किया और हर नई चीज़ पढ़ने पर उसे लगता कि जैसे अब तक वह कुछ भी न था और महज़ उस एक चीज़ के जानने पर अब वह सब कुछ जान गया है। उसके दूसरे दिन ही वह नए सिरे से ख़ला में भटकना शुरू कर देता। हर नए बाब[2] के साथ उसकी बेचैनी और ज़ेहनी और रूहानी नादारी[3] का एहसास बढ़ता गया और साथ ही साइंस के मज़मून से उसकी गहरी बेज़ारी बढ़ती गई। इसके बावजूद कितने ही अरसे तक वह उसे छोड़ने की कोई शुऊरी कोशिश न कर सका, क्योंकि उस मज़मून में एक वक़्ती दिलचस्पी और आन-बान का एहसास था, जिससे वह नजात[4] हासिल न कर सका। हर इनसान, न चाहने के बावजूद, कई एक चीज़ों में उनकी ख़ालिसतन ख़ुशकुन ख़ुसूसियात की वजह से फँसकर रह जाता है। आख़िर एक रोज़ ग़ैर-शऊरी तौर पर, जैसा कि अक्सर होता है, बेहद उकताकर उसने उस मज़मून को हमेशा के लिए छोड़ दिया। उसके काफ़ी अरसे बाद उसने एक रोज़ सोचा कि जो कुछ उसने किया, या हुआ, बिलकुल ठीक था, क्योंकि उसे किसी बात का भी जवाब न मिल सका था, कि जो सवालात और उलझनें उसके दिलो-दिमाग़ को घेरे हुए थीं, उनका जवाब वहाँ पर था ही नहीं, कि साइंस किसी बुनियादी सवाल का जवाब नहीं देती, कि इस तमाम अरसे में जो एक धीमी और मुसलसल आवाज़ ज़िद्दी लहजे में पुकारती रही थी : क्यों? क्यों? क्यों? इसका जवाब वहाँ नहीं था। किसी हद तक उसका जवाब

1. हीनभावना, 2. विषय, 3. कंगाली, 4. मुक्ति।

उसे फ़लसफ़े में मिल गया, जिसकी तरफ़ अब उसने रुजूअ[1] किया था या कम-से-कम उसने यह समझा कि फ़लसफ़ा उसका जवाब है। फ़लसफ़े की दुनिया ने उसे तेज़ी से मस्हूर[2] किया और वह इब्तिदाई[3] आसान फ़लसफ़ा पढ़ते-पढ़ते हक़ीक़ी जदीद फ़लसफ़े[4] तक आ पहुँचा। फ़लसफ़ा साइंस की तरह दिलचस्प और हैरतअंगेज़ न था, लेकिन वह गहरा, देर-पा, सुकून-बख़्श मौज़ूअ था। साइंस पढ़ने के दौरान उसमें जो जल्दी का अन्दाज़ पैदा हो गया था, अब जाता रहा था। फ़लसफ़े का एक पन्ना पढ़कर उसे कोई ख़्वाहिश बाक़ी न रहती और उसकी तबीअत की उदासी और ठहराव और बढ़ जाता।

साइंस के जादू में जो जकड़े जाने का एहसास था, उससे अब वह आज़ाद हो गया था। कभी-कभी वह किताब खोलकर एक लाइन पढ़ता और आँखें बन्द करके तम्बाकू पीने लगता। वक़्ती तौर पर उसे गहरे इत्मीनान का एहसास होता और उसके दिल में कुछ भी करने की ख़्वाहिश बाक़ी न रहती। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह आँखें खोलता और बन्द कर लेता और उसे महसूस होता कि ज़िन्दगी में कुछ भी नहीं है; कोई काम, कोई जज़्बा, कोई मसरूफ़ियत, कोई इन्तिज़ार, कुछ भी नहीं। सिर्फ़ "वह" है और उसका तम्बाकू का पाइप है और लम्बी आरामदेह कुर्सी है और किताबों से भरी हुई अलमारियाँ हैं और गहरा इत्मीनान, गहरे अम्न का एहसास है। आख़िरकार उस जगह, उस कमरे में हर चीज़ का ख़ातिमा है और आज़ादी है और वह ख़ुशी से सारी उम्र बिता सकता है। कभी-कभी वह छड़ी के सहारे चलता हुआ निशस्त के कमरे में जाकर अज़रा के सामने, जो बैठी मोज़े बुन रही होती, दीवार की तरह खड़ा हो जाता। अज़रा को महसूस होता कि वह उसको यूँ देख रहा है जैसे

1. प्रवृत्त, 2. मन्त्रमुग्ध, 3. प्रारम्भिक, 4. वास्तविक आधुनिक दर्शन।

कि वह कोई अहमक़ हो, या कोई बेजान चीज़ हो, जैसे मेज़ या कुर्सी या शायद कहीं भी नहीं देख रहा, बल्कि सोते में चल रहा है...काफ़ी देर के बाद वह चन्द बार आहिस्ता-आहिस्ता दुहराता : "तुम जानती हो? तुम जानती हो?" उसका लहजा हैरतनाक तौर पर उदास, सर्द और पुर-सुकून होता। अज़रा, जो उसके साथ रहने की आदी हो चुकी थी, मामूली अन्दाज़ में हँसती और कोई बात करने लगती, जिस पर वह उसके पास बैठ जाता या उसकी बात अधूरी छोड़कर वापस चला जाता।

आहिस्ता-आहिस्ता फ़लसफ़े का असर भी ख़त्म हो गया, जैसे कि तमाम दुनियावी उलूम[1] का असर इनसान की ज़िन्दगी में जल्द या देर से कभी-न-कभी ज़रूर ख़त्म हो जाता है। अब वह आहिस्ता-आहिस्ता पन्ने पलटता है और ख़ामोशी से, बग़ैर जाने हुए, दिलो-दिमाग़ के ख़ाली हो जाने का मातम करता रहता। लेकिन तम्बाकू के धुएँ और किताबों से भरे हुए उस कमरे से निकलना अब उसके लिए बहुत मुश्किल हो चुका था। यहाँ आकर उसको महसूस होता कि उसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं रही; उन किताबों की, लैम्प की, मेज़ और कुर्सी की, तम्बाकू के डिब्बे की, किसी भी चीज़ की नहीं। यहाँ पर वह अपने हक़ीक़ी नंगे वुजूद में आ जाता और अपने आस-पास की हर चीज़ के साथ पुराने सादा-दिल दोस्तों की तरह मिलता, जिनके साथ आप मुकम्मल बेनियाज़ और बे-राज़ तौर पर रह सकते हैं। यह छोटा-सा कमरा उसके लिए हर क़िस्म की आज़ादी की, हर चीज़ के ख़ातिमे की एक नई अलामत बन चुका था।

यही वजह थी कि घर से बाहर वह हमेशा किसी-न-किसी सहारे की

1. विद्याएँ।

तलाश में रहता, मगर चूँकि वह एक बूढ़े होते हुए, उकताए हुए आदमी की तरह रूहानी तौर पर मुन्कसिर[1], लेकिन ज़ेहनी तौर पर पुर-तकब्बुर[2] था, इसलिए बहुत कम लोगों से मरऊब[3] होता। और जो लोग उसे मरऊब करते, एक हासिदाना जज़्बे[4] के ज़ेरे-असर वह कभी-कभार ही उनके क़रीब हो सकता। उन दिनों उस तनहा सूरत इनसान पर इब्तिला[5] का यह वक़्त आया था।

सिर्फ़ पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी अनीसुर्रहमान एक ऐसा शख़्स था दफ़्तर भर में, जिनके साथ नईम को दिलचस्पी थी। वह उम्र में नईम से चन्द बरस बड़ा, छोटे क़द का तन्दुरुस्त आदमी था। उसके गाल अगर इतने फूले हुए, गर्दन इतनी मोटी और बाल माथे पर बहुत नीचे तक उगे हुए न होते, तो ख़ूबसूरत कहलाया जा सकता था। पचास बरस के लगभग होने के बावजूद उसके बाल बेहद सियाह और खुरदरे थे और तेज़, ज़हीन और आँखें गोश्त ज़्यादा होने की वजह से अन्दर को धँसी हुई थीं, जिन पर वह सुनहरे फ्रेम का नाज़ुक-सा चश्मा लगाए रखता था। वह जंगली भैंसे की-सी फुर्ती और क़ुव्वत के साथ चलता-फिरता था और जब होश में होता तो उसके बाज़ुओं और गर्दन के बाल खड़े हो जाया करते। किसी ने उसे कभी सुस्त या बेकार बैठे हुए न देखा था। दफ़्तर का काम वह पलक झपकते में ख़त्म कर लेता और फिर दोस्तों को ख़त लिखता या फ़ोन पर अपनी बीवी से बातें करता रहता। जब कोई काम न होता तो उठकर दफ़्तर में चक्कर लगाने लगता और हर एक से एक साथ बातें करता। उसके अन्दाज़ से ज़ाहिर था कि उसकी किसी से शख़्सी दिलचस्पी न थी। वह किसी की ख़ैरियत पूछता या किसी से हमदर्दी की बातें करता तो महज़ अपने आपको मसरूफ रखने या

1. नम्र, 2. अहंकारी, 3. प्रभावित, 4. ईर्ष्यालु भावना, 5. परीक्षा, दुख।

फ़ालतू वक़्त को सर्फ़ करने की ख़ातिर करता। ज़रूरी नहीं कि यह बात सही हो, लेकिन कोई ऐसी बात ज़रूर थी जिससे दूसरों को ऐसा ख़याल होता था। उसके साथ काम करनेवाले उससे डरते थे, शायद हासिदाना इज़्ज़त भी करते थे, पर मुहब्बत न कर सकते थे। इसका सबको पता था। इसके बावजूद, नुमायाँ तौर पर कोशिश किए बग़ैर वह शख़्स जिस हलक़े[1] में घूमता, जिस महफ़िल में मौजूद होता, सब पर छाया रहता। यूँ लगता था कि उसके पास हर बात का, हर वाक़िए का निहायत दानिशमन्दाना[2] और सही जवाब मौजूद था। उसके अन्दाज़ के ग़ैर-शख़्सीपन[3] के बावजूद एक अजीब तरह की गर्मी और मिठास थी जो लोगों को उससे डरने, उसकी इज़्ज़त करने और उससे मरऊब होने पर मजबूर करती थी। जब वह बातें कर रहा होता, तो उसकी तेज़ आँखों और हाथों की हरकत से एक जादू-सा पैदा हो जाता, जो वक़्ती तौर पर बहुत ताक़तवर होता। वह उन लोगों में से न था, जिनके जाने के बाद देर तक आप उनके मुतअल्लिक़ सोचते रहते हैं, मगर वह जितना अरसा मौजूद रहता, आप उसके जादू के असर में रहते थे और उसके मुक़ाबले में अपनी कमतर हैसियत को मानने पर मजबूर हो जाते थे।

दो-एक बार नईम उसके घर पर भी गया, जहाँ उसकी बीवी उसकी पहली बीवियों के दो बच्चों की देखभाल करती थी। बिलक़ीस मुश्किल से पच्चीस बरस की सेहतमन्द और ख़ुशमिज़ाज लड़की थी और उसकी तीसरी बीवी थी। पहली मुलाक़ात में ही नईम को मालूम हो गया कि वह मामूली पढ़ी-लिखी ख़ुशहाल लड़की उम्र के फ़र्क़ के बावजूद अपने शौहर से पूरी तरह मुत्मइन थी और बहुत सलीक़े से घर और बच्चों को साफ़-सुथरा रखती थी। ज़िन्दगी की

1. मंडली, 2. बुद्धिपूर्ण, 3. अवैयक्तिक।

तरफ़ उसका एक सेहतमन्दाना, आमियाना[1] रवैया था। वह बहरहाल ऐसी औरत न थी, जिससे नईम मुतअस्सिर हो सकता, चुनाँचे उसने उसे नज़रअन्दाज कर दिया। बिलक़ीस ने भी उस सफ़ेद बालोंवाले, अध-गंजे, और छड़ी के सहारे लँगड़ाकर चलते हुए ग़ैर-दिलचस्प आदमी को कोई ज़्यादा अहमियत न दी।

[*उदास नस्लें* पुस्तक से]

1. आम लोगों जैसा।

गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान

*

कृष्णा सोबती

सन्नाटे को भेदती गाड़ी। गाड़ी के साथ-साथ दौड़ रहा है—अतीत और वीराना। पत्थरीली चट्टानों का उजाड़। कँटीली झाडिय़ाँ और परायापन। मँझोले डूँगरों की शृंखलाएँ।

वह सरसों के हरियाले पीले खेत क्या हुए! कहाँ ओझल हुए वह भरपूर पत्तोंवाले छाँहदार पेड़। क्या हुईं वह कच्ची राहें! वह दरिया चनाब की झिलमिलाती लहरें। कहाँ खो गई वह सुथरी चमकती रेत। और अब यह गाड़ी के साथ-साथ दौड़ती डूँगरों की सलवटों में छिपी मजबूत राजपूताना धरती।

पर्स में से लिफाफा निकाला। कागज एक बार फिर से पढ़ा।

—सिरोही राज। रेलवे स्टेशन एरिनपुरा।

छुटपुट बस्ती दीखने लगी थी। सीट के नीचे दुबका सहमा पड़ा

सामान खींचा और खिड़की से आँखें बाहर जुड़ा दीं।

गाड़ी की चाल धीमी हुई। दोपहर की पकी धूप में सुनसान सपाट प्लेटफार्म। हरा जंगला। बाहर जाने को फाटक। बस? इतना भर!

गाड़ी रुकी।

उसने सूटकेस खींच नीचे उतारा। फिर होल्डाल और बैग। पर्स चेक किया। इधर-उधर देखा। सामने नजर आई एक नाटी सी शख्सियत। धोती कमीज, पाँव में गुरगाबी और सिर पर काली किश्ती टोपी। बड़े कदम भर इधर आ रहे हैं।

पास आ नमस्कार किया—आप दिल्ली से पधारी हैं न!

सिर हिलाया—जी।

—मेरा नाम मुन्नालाल है। मुझे आपको लेने के लिए भेजा गया है। आप बाहर चलिए। मैं सामान उठाकर लाता हूँ।

पाँव जैसे रूठ रहे हों। चलने के लिए तैयार नहीं। लौट चलो। क्या सचमुच यहाँ आने की इतनी मजबूरी थी? थी तो—एक अंदरूनी उजाड़ से दूसरे की ओर—क्या करोगी। उस विज्ञापन के पीछे-पीछे यहाँ तक चली आई हो। अजीब लग रहा है।

—आइए-आइए, बस इन्तजार कर रही है आपके लिए।

—क्या एक प्याला चाय मिलेगी यहाँ?

—बस छूट जाएगी। बावनवाड़ पर शायद चाय मिल जाएगी। आप बैठिए आगे की सीट पर, मैं सामान रखवाता हूँ।

पुरानी भड़भड़ाती खस्ता बस किसी जमाने की!

खिड़की से बाहर नजर दौड़ाई—आँखों में धूल भर गई हो जैसे।

पर्स खोला, रूमाल निकाला और आँखें पोछ लीं, जैसे धूल पोंछते हैं।

पुराने समयों के कंकर।

लौटकर? हाँ क्यों नहीं। अब भी जा सकती हो। टिकट के पैसे तुम्हारे पास हैं।

हैं तो।

फिर!

फिर क्या?

फिर भी कुछ तो—

उसने असमंजस में सामने की सीट की ओर देखा—गला सूख रहा है। क्या पानी मिलेगा?

—बावनवाड़ पर मिल जाएगा।

—बावनवाड़ अभी कितनी दूर है?

—आने ही वाला है।

उसने आँखें बन्द करनी चाहीं, फिर खोल लीं।

—यहाँ से स्टेशन की ओर जाती कोई बस मिलेगी?

—क्यों, क्यों बाई जी, ऐसा क्यों पूछ रही हैं? आपको यहाँ से भेजा लेटर तो मिल गया था न?

—वह बात नहीं है—

मुन्नालाल जी ने किश्ती टोपी उतारी, सिर खुजलाया, फिर टोपी जगह पर रख ली और चिन्ता से पूछा—

—स्टेशन पर कुछ रह तो नहीं गया? तीन ही नग थे न?

वह कुछ बोली नहीं। सिर्फ सिर हिला दिया—हाँ, और नहीं।

यह दूर-दराज का सिरोही राज। यहाँ क्या बनेगी अपनी बात। घर से काम करने को निकली थी—अब लौट जाने को तैयार हो रही हूँ।

तुम्हारी परेशानी क्या है? खुद को ही नहीं बता पा रही कि संशय में क्यों हूँ। यहाँ पहुँचकर मन में उठी यह कैसी दुविधा है! क्यों अनमनी हो उठी हूँ!

क्या अपना वतन गुजरात छोड़ने से?

क्या लाहौर छोड़ने से?

क्या दिल्ली छोड़ने से?

देखो झटक दो इस उदासी को। उदासी कुछ भी जुटा नहीं सकती। वह कुछ भी नहीं जुटाती। जो हो गया वह हो चुका।

बस बावनवाड़ पर आ रुकी। वह नीचे उतरी। मुन्नालाल कहीं दीख नहीं रहे थे। शायद चाय की तलाश में गए होंगे—यह तो मैं अपने

आप भी कर सकती थी। उन्हें परेशान कर रही हूँ।

—लीजिए चाय।

—आप?

—नहीं, मैं कम पीता हूँ। मन्दिर में चलेंगी?

—जी।

प्रवेश द्वार—अन्दर जैसे रंग-बिरंगा जाल बुना हो। छोटी-बड़ी मूर्तियाँ। बाहर निकलकर देखा तो ऊपर चट्टानों के बीच एक झोंपड़ा। एक-एक करके सभी याद आने लगा।

उसने अनमनी सी निगाह टेकरी के पत्थरीलेपन पर घुमाई। ढलान के किनारे दो-चार पेड़ों की पतली-सी लहराती छाँव और नीचे दुबका पड़ा जोहड़—काई की हरी सतह पर मच्छर, कीड़े-मकौड़े। दूर उतराई से नीचे आती एक लम्बी मजबूत डग भरती काया। लम्बे हाथ-पाँव और सिर पर लिपटनियों में सहेजा पग्गड़। छाँह तले बैठ सिर पर रखे साफे में से गोलाकार रोटी का टुकड़ा तोड़ा और बाकी दुबारा पग्गड़ में सहेजकर रख लिया और इस दुनिया की सबसे बड़ी बरकत रोटी के लुक्मे मुँह में डालने लगे। हाथ की वस्त खलास और सचमुच के जीते-जागते आदमी के बच्चे ने उठकर जोहड़ के किनारे बैठ साफे की लड़ का किनारा ओठों पर फैलाया और सिर झुका जोहड़ से पानी गटक लिया। अचरज यकीनन हुआ आँखों पर कि साफे की बाहरी तह पर चिपकी काई, मच्छर, कीड़े सब हाथ से झटक दिए। पानी की किल्लत पहली बार देखी। पहली बार—वह

बस की ओर बढ़ रही है और तलवे बेजान हैं। वह छूट गई पुरानी हवेली, लकड़ी पर ठुँके पीतल के कीलोंवाला फाटक-पक्के चबूतरे पर कुआँ-चरखड़ी ड्योढ़ी। तहखानों की ओर उतरती सँकरी सीढ़ियाँ—अब वहाँ की बात मत सोचो। आने से पहले राजपूताना का गजेटियर तो देखा था। रियासतें, ठिकाने, ठिकानेदार, महल-जागीरें, गोल-गोलियाँ, भील गरासिया-लहँगे, चोलियाँ, धोतियाँ-साफे, रंग-बिरंगी ओढ़नियाँ।

नए कमरे में उसने कई करवटें बदलीं। नई जगह का उनींदा। सिरोही राज के गैस्टहाउस में न घर अपना और न कमरा। भारी-भरकम, समय से पिछड़ा हुआ पलँग। किसी असली की सस्ती नकल। नीले थोथेवाली दीवारों की पुताई। खिड़कियों के काँच पर सफेदी के धब्बे। दरवाजों की लकड़ी सस्ते रंग-रोगन से बदरंग। परदे यहाँ-वहाँ से अपनी चौखट से गिरे मजबूरी में लटके हुए। बेमतलब। बेवजह।

हर चीज की वजह होनी भी क्यों जरूरी है? उसने उठकर एक बार फिर किवाड़ की चिटकनी देखी। बत्ती बन्द की। निपट अँधेरा।

नहीं।

बाथरूम के कमजोर बल्ब की मद्धम सी पीली रोशनी ने मानो आश्वस्त किया हो। सिर को छुआ। कहीं कुछ उजाले की पहुँच वहाँ भी है कि सिर्फ अँधेरा ही अँधेरा! पुराने ठिये से उखडऩा, पुराने लगावों से दूर होना और वतन को पीछे छोडऩा क्या एक ही बात है? लाहौर

से दिल्ली और दिल्ली से सिरोही—

कैसे पढ़ा जाएगा इस नई लिपि को। नई रियासती वर्णमाला! क्या पहचान में आ रहा है नया लैंडस्केप। नई जलवायु! जाने किस धुँधलके में से होकर निकल रही हूँ।

उधर एम.ए. का फार्म, इधर विज्ञापन देख अप्लाई कर दिया। दोचित्ता परायापन कि अपनों से दूर न हो जाऊँ और परायों के नजदीक न हो जाऊँ। काश स्टेशन से लौट जाती—बस कल के लिए मुल्तवी कर दो यह ऊहापोह।

आँखें बन्द कीं। गजर की टंकार। बारह। अभी सुबह होने में बहुत देर है। एकाएक भारी-भरकम बूटों का शोर। जैसे फौज की टुकडिय़ाँ गुजर रही हों। दिल-दिमाग में खलबली मच गई। बेलचापार्टी। गुजरात सराफे से निकल रही है फौज की-सी वरदी में सियासी पार्टी।

कोई डर-भय!

नहीं।

लकड़ी के बड़े फाटक के अन्दर हवेली का सुरक्षित संसार। तीन पाटोंवाला ऊँचा लकड़ी का फाटक। मजबूती दिखाती पीतल की कीलों की जड़त।

खुले बड़े सहन में पक्के चबूतरे पर कुईं। सामने ड्योढ़ी-हवेली का मुखद्वार। नीचे-ऊपर, कमरे, परकोटे, बैठकें और तहखानों की ओर उतरती सँकरी पैडिय़ाँ।

खोला था उसने एक दिन वह कपाट। बासी बोसीदा गंध से सना

अँधेरा। गुमसुम। ऐसे गरदीले तहखाने की खोह में मुझे दिखा था एक उल्लू। आँखों को मितली होने लगी और मैं दौड़कर ऊपर आ गई। शोर मचा दिया—तहखाने में देखा—एक उल्लू! आँखों में दो बटन-से लगे थे।

दादी माँ ने टोका—बच्ची, इसका नाम नहीं लेना। तुमने कोई और परिन्दा देखा होगा!

—नहीं, दादी माँ, नहीं। जानती हूँ, वह उल्लू था।

—दादी ने पास बुलाया—भूल जाओ, तुमने कुछ देखा भी है।

—क्यों दादी माँ?

—जिस घर, हवेली में यह अपशकुनी बैठ जाए, उसमें या तो रहनेवाले लोग नहीं रहते या इमारत गर्क हो जाती है।

हो गई। उसके पाँव तले से शहर ही खिसक गया।

उसने माथे को छूकर देखा, कहीं उल्लू की आँखें उसके माथे पर तो नहीं आ लगीं। पुरानी यादों पर किवाड़ भिड़ा दो। अब वहाँ हमारे लिए कुछ नहीं है। हम उस भूगोल, इतिहास के बाहर हो चुके हैं।

उन दृश्यों को, उन यादों को झटक दो। अपने से परे फटक दो।

सो जाओ।

दादी ऐमनाबाद वाले फार्म पर थी। खेतों की राह भागी और आधी रात रोढ़ी साहिब गुरुद्वारे पहुँची।

छोटे चचा बलराज वहीं छूट गए थे। दर्द से उनकी टाँग जुड़ी थी। फार्म पर रखी बन्दूक उनके किसी काम न आ सकी। भीड़ फार्म की ओर बढ़ रही है। खबर पा मौलू ने चचा को चबारे से उतारा। बोरी में डाल अपने कंधे पर उठा लिया। सिर को खेस से ढँक अपनी झुग्गी में डाल आया। घरवाली चूल्हे के आगे बैठी रोटी-सालन पकाती रही और मौलू भीड़ के साथ लूट-मार में शामिल रहा। रात देर गए जब भीड़ तितर-बितर हो गई तो मौलू ने चचा का बोरा-बुचका कंधे पर डाला और खेतों के बीच से होकर रोढ़ी साहिब जा पहुँचा।

दादी ने मौलू को असीसें दीं और चाचा ने कमीज की जेब से रूमाल निकाल मौलू की ओर बन्दूक का लाइसेंस बढ़ा दिया—मौलू! अपना हाथ इधर करो और भंडारघर की यह लो तालियाँ—कौल करार समझो, आज से फार्म और घर तुम्हारा हुआ। बरखुरदार किसी और के हाथ में न जाने देना।

मौलू ने दादी को पैरीपौना बुलाया और अँधेरे में ओझल हो गया।

रज़मक से नीचे उतरे चाचा धनराज ने रावलपिंडी छोड़ी हवाई जहाज से। सपरिवार बचकर आए पर उन्हें अन्दर ही अन्दर महीनों गम खाता रहा कि उनके कालीन-गलीचे जो उन्होंने थामस कुक में जमा करवाए थे, वह उन्हें न मिल सकेंगे। जो कोई भी सुनता, उन्हें घूरता रहता। जिस दोजख से बचके आए हैं—मालूम नहीं बरखुरदार को कि हालात क्या थे। जलालपुर कीकना की द्रोपदा? अपने आप ही वहाँ रुक गई कि वैरियों ने घर में डाल ली!

लालामूसा वाले बड़े मामा अपने इकलौते बेटे का धुस्सा गले से लगाए उसे कैम्पों में ढूँढ़ते। हर पहचानवाले को पूछते—क्या देखा तुमने उसे गाड़ी में चढ़ते? किसी गलत गाड़ी में जा बैठा होगा।

किसी ने बूढ़े पर तरस खाकर कहा—एक गाड़ी लालामूसा से सरकी थी। उस लाश-मेल में तो एक धड़कन न बची थी।

क्या खबर, मौका लगते कहीं बीच में उतर गया हो।

अमृतसर वाले कैम्प में पड़े रहो भाई—किसी न किसी दिन बेटा आन मिलेगा।

बाहर कहीं कुत्ते भौंकने लगे थे।

गजर बजा—एक।

उसने उठकर मुँह पर पानी के छींटे दिये, खिड़की से बाहर झाँका और सिर पैताने की ओर कर सोने की कोशिश करने लगी।

आँखों के आसपास तैरती पतली-सी नींद में अचकचाकर चौंकी। कहीं कोई आहट है क्या?

कलाई पर घड़ी देखी। सुबह होने को है। सामने की खिड़की में जा खड़ी हुई। बाहर देखा। डूँगर के पीछे से हलके उजाले की लौ। दिन उघड़ रहा है, जैसे कोई पुरानी परिपाटी नई अँगड़ाई ले रही हो। अम्बर की निलाई और भूरी धरती की लुनाई अपनी-अपनी दिशा से एक-दूसरे की मन-मनौती कर रहे हैं। जो कुछ भी दीख रहा है प्राचीन है, शायद प्राचीनतम! यह धरती, वह सूरज और वह टेकरी। सूरज के उगते ही डूँगरों पर लहराने लगी धूप की उजली ओढ़नियाँ। दुबली-पतली पगडंडियों के ओर-छोर घिरने लगे, पेड़ों के झुंड चमकने लगे सूरज भगवान के प्रकाश से।

तुलना!

नहीं! तुलना क्यों करें।

भरपूर फसलोंवाले खेत। सदा-सदा हरियाती धरती। न कमी पानी की, न धूप की, न छाँह की। बस अब वह हमारा वतन नहीं। मत देखो उधर। रह-रहकर वहाँ की बात मत सोचो। अब इस मोड़ से पीछे नहीं, आगे देखने का समय है।

समय।

इस समय में खो गया है वह भूखंड, जिससे जुड़ा हमारा वजूद था। हमारी संज्ञा थी। उसे सियासत का भूचाल निगल गया है। जो ऊपर था वह नीचे आ गया है। जो नीचे था, उधर पछाड़ दिया गया है। अब हम सब उस सीमान्त के बाहर हैं, और वह सीमान्त हमारे बाहर है। उस अनहोनी को अपने चित्तपट से मिटा दो। जाती सरकार ने सजा दी हमें और आती सरकार ने हमीं से कर वसूली की।

हिन्दुस्तान जिन्दाबाद!

पाकिस्तान पायंदाबाद।

यह आवाजें गुम क्यों नहीं होतीं। शीशा पिघलता रहता है कानों में। आगे की ओर देखो। छोड़ दो उस सपने का पीछा जो पराए मुल्क में ओझल हो गया है।

दरवाजे पर किसी ने हाथ की थाप दी। उसने सतर्क हो ऐसे कदम

भरे ज्यों भीड़ बाहर खड़ी हो!

—कौन!

—हुकुम मैं हूँ देवला। चाय पूछने आया हूँ।

ढीले से पग्गड़ में बारह-चौदह बरस का लड़का।

—चाय ला रहे हो तो ले आओ!

—हुकुम, प्याले में कड़क लाऊँ कि—

—नहीं-नहीं। चाय दूध, चीनी सब अलग।

—केतली में न?

—हाँ ले आओ।

उसने सिर हिला दिया—अच्छा बाई जी।

वह चाय के इन्तजार में कई देर बरामदे में टहलती रही।

देवला को आते न देख, अन्दर गई। शाल ओढ़ा और दरवाजा भिड़ा बाहर घूमने लगी। सामने देखा, हाथ में दूध का बर्तन लिये देवला चला आ रहा है।

—अभी तो दूध ही लाए हो, चाय कब तक मिलेगी?

वह हँस दिया।

—अभी रसोड़े में चूल्हा जला है, हुकुम।

अटपटा लगा।

—चाय जब तैयार नहीं थी तो इतनी जल्दी पूछने क्यों आ गए देवला?

सुमेर ङ्क्षसह फूफा ने कहा था—पूछकर आ जाओ।

—सुमेर ङ्क्षसह कौन हैं?

—रसोड़ा इंचार्ज।

उसने मन ही मन दर्ज किया। दिन की शुरुआत ही गलत, आगे-आगे देखो होता है क्या।

वह घूमने के लिए चौड़ी सड़क की ओर निकल गई।

चिडिय़ाँ चहचहाने लगी थीं। मन्दिरों में घंटे-घडिय़ाल बजने लगे थे। शहर की शोरीली लय धीमे-धीमे शहर की हवा में थिरकने लगी थी। सामने खुले विस्तार में खड़ी इमारत। कॉल्विन हाईस्कूल। कॉल्विन शायद कमिश्नर या रेजिडेंट रहे होंगे।

सड़क पर सलीके की धीमी रफ्तार में एक स्टूडीबेकर निकल गई। कार पर पताका थी। शायद राज-परिवार में से कोई।

कार के पहियों ने उसमें स्फूर्ति का संचार किया। गतिशील होना ही गतिवान होता है।

और तुम।

यहाँ पहुँचकर भी—उलटी दिशा की ओर देख रही हो।

जाने लगातार अनमनी क्यों हूँ।

चाय की इन्तजार में साढ़े आठ हो चुके थे। पुरानी रियासती घडिय़ाँ क्या इतना पीछे चला करती होंगी।

ठीक नौ बजे चाय की ट्रे के साथ देवला नमूदार हुआ। ट्रे मेज पर रखी और पूछा—नाश्ता कितने बजे?

उसने दिलचस्पी से देखा।

—नाश्ते में क्या मिल सकता है?

—दही पराँठा। आमलेट पराँठा।

—और

—चाय पराँठा।

—ठीक, दही पराँठा।

—कितने पराँठे लाऊँ।

—सिर्फ एक।

सूटकेस में से कपड़े निकाले तो दोचित्ती सी हो उठी। यहाँ क्या रास आएगा, नहीं मालूम। शायद अपने को बहुत परेशान कर रही हूँ। क्या फैसला करने की इच्छा कमजोर पड़ गई है या स्थितियों को पढऩेवाली दूरअन्देशी। हमारे हाथ में अब कुछ नहीं। पर तुम खुद तो हो अपने आप में। विज्ञापन तुमने अखबार में पढ़ा। देसाई अंकल से यहाँ के नए हालात जाने। उनके सुझाव पर सेक्रेटेरियट लायब्रेरी

से गैजेटियर देखे। अब यहाँ रुकने और न रुकने को लेकर मन में दुविधा कैसी! यह अनमनापन क्यों? सूटकेस में से देसाई अंकल द्वारा दिया गया छोटा सा पैकेट निकाला। उस खत की कापी पर्स में रखी जो देसाई अंकल पहले ही दीवान साहिब को लिख चुके थे।

बाहर हार्न की आवाज थी। कहीं मेरे लिए तो नहीं!

ड्राइवर ने लिफाफा आगे किया—आपको लेने आया हूँ—दीवान साहिब नाश्ते पर आपका इन्तजार करेंगे!

हल्का महसूस किया यह सोचकर कि वह तैयार हो चुकी थी।

उसने जीप में बैठे पहली बार खुली आँखों शहर को देखा। अपने को चेतावनी दी—हर शहर में लाहौर या दिल्ली ढूँढना कहाँ की समझदारी है!

ऊँचाई पर बने किले और महलों की ढलान से जीप घनीली बस्ती की ओर मुड़ी।

बाजार किसी भी बाजार की तरह। गद्दियों पर साफे और गांधी टोपियाँ। टिमकों की तरह चलती-फिरती घाघरा, चोली और ओढ़नियाँ। दिल्ली के अखबारों में उस विवाद की भी खबर छपती रही थी कि सिरोही राजस्थान में जाएगा कि गुजरात में। अम्बाजी मन्दिर इसी राज में पड़ते हैं। भक्तों के दबाव पर सरदार पटेल का आग्रह शायद कुछ रंग लाएगा।

नए-पुराने सिरोही राज की मान-मर्यादा को सिर के साफे पर उठाए दीवान साहिब का दर्शनी पट्टेदार सीढ़ियों पर मुस्तैदी से खड़ा है। कमर में कसी लाल सुनहरी पेटी, ढाल और तलवार वाले योद्धा की याद दिलाये। इस ऐतिहासिक हस्ती को भला कौन अनदेखा कर सकेगा। दीवान साहिब की शक्तिवान मोहर उसके माथे पर लगी है।

अनुभव की खुली-छिपी निगाह से बाई की ओर देखा—तनिक सा सिर झुकाया और हाथ फैलाकर संकेत दिया—पधारें। दीवान साहिब बैठक में विराजते हैं।

सहन पार कर देखा, अन्दर फर्श पर स$फेद झक्क जाजम। दीवार के सहारे गद्दी और तकिया और उस साज-सज्जा और व्यवस्था को पितृत्व का मुखड़ा प्रदान करता ठाकुर साहिब का सयाना समझदार चेहरा। राजपूती छवि के ठीक विपरीत। चौकी पर रखे कलमदान में चुस्ती से अटकी दीवान साहिब की कानूनी कलम संयमित खामोशी से प्रजा की मनमानियों को चुनौती देती हुई। सब्र और धीरज बनाए रखो। कभी न कभी तो गुहार पड़ ही जाएगी।

—गुड मार्निंग सर!

—आओ बेटी।

ठाकुर साहिब ने उठकर अभिवादन लिया और सहज, सीधे स्वर में कहा—उधर ही चलते हैं। नाश्ता वहीं लग रहा है।

दहलीज लाँघकर खाने का कमरा। बीचोबीच बिछी एक दूसरे से जुड़ी दो चौकोर चौकियाँ। और, चारों ओर पड़ीं गद्दियाँ।

उत्तर की ओर है दीवान साहिब का स्थान। ठीक सामने पड़ी है

फल की ट्रे।

उसने दीवान साहिब के पूर्व में पड़ी एक गद्दी छोड़ दी। दूसरी पर बैठने को थी कि दीवान साहिब ने कहा—इधर बैठो, बेटी मेरे पास। रास्ते में कोई दिक्कत तो नहीं हुई?

—जी नहीं। आराम से पहुँच गई।

—सीट रिजर्व करवा ली थी न!

—जी।

उसने पर्स में से देसाई अंकल का पैकेट निकाल दीवान साहिब की ओर बढ़ा दिया।

—देसाई और मैं अहमदाबाद से मित्र हैं। एक ही स्कूल में पढ़े। कॉलेज में अलग हुए, पर एक दूसरे से मिलते रहे। वे दिल्ली पहुँच गए और मैं कानून पूरा कर इधर आ गया।

लहँगे-ओढ़नी में ढकी-सिमटी बाई ने नाश्ता चौकी पर रख दिया। गर्म-गर्म हलवा और पूरी-आलू।

दीवान साहिब ने पूछा—देसाई और आपके पिताजी एक दूसरे से परिचित हैं?

—जी।

—बेटी, तुम्हें यहाँ कोई दिक्कत होनेवाली नहीं। अगर इस शहर में दिल अटक जाए तो फिर कोई चिन्ता नहीं। छोटा समाज है। पुरानी तर्ज का। इसका ध्यान रख लिया जाए तो कोई मुश्किल नहीं। वक्त

मजे में कट जाएगा। लोग भले हैं। हाँ, एक दूसरे पर नजर जरूर रखे रहते हैं।

लगा दीवान साहिब उसका इंटरव्यू लेनेवाले हैं।

चम्मच-भर मीठी चटनी उसकी प्लेट की ओर आई—इसे चखो, अच्छी है।

वह कुछ चौकस हुई।

—एक बार देसाई दिल्ली से अहमदाबाद जाते रास्ते में मुझे मिलने रेल से उतर गए और बिना सूचना के यहाँ पहुँच गए। बोले—ठाकुर, तुम्हारी दाद देता हूँ। तुम बहुत पुरानी दुनिया में जमे हो।

—जानता हूँ, तुम्हारी दिल्ली की खूबियाँ। पुराना भरपूर अंग्रेजी राज और दिल्ली वैसी की वैसी ही होगी। क्या गलत कह रहा हूँ?

हम दोनों अपने-अपने ढंग से एक दूसरे पर हँसते रहे।

जान गई दीवान साहिब की पुरानी आँखें कुछ अतिरिक्त देख-पढ़ रही हैं।

मुँह का कौर खत्म कर कहा—कल स्टेशन से आते हुए मैं भी कुछ ऐसा ही सोच रही थी कि इतनी दूर क्यों चली आई।

—कठिन समय में तुमने कुछ करने की सोची, यह जानकर मुझे तो अच्छा लगा है। देखो बेटी, जल्दी में कुछ भी फैसला करने की जरूरत नहीं। समझ रहा हूँ, अगर तुम यहाँ रह सको तो हमें खुशी होगी और अगर तुम लौटने का मन बना लो तो, हम तुम्हारे आने को

'इंटरव्यू' में डाल देंगे। तुम्हें आने-जाने का किराया दे दिया जाएगा।

—धन्यवाद, मैं कृतज्ञ हूँ। पर दीवान साहिब यह ठीक तो न होगा।

—नहीं, ऐसा न सोचना। हमारी ओर से कुछ विशेष नहीं किया जा रहा। यहाँ की किसी कंडीशन को तुम भी नापसन्द कर सकती हो। हम कह लेंगे, हमें प्रत्याशी नहीं जँचा।

उसने चिन्तित होकर कहा—सर कुछ भी कहें पर यह नहीं। मेरा यह पहला इंटरव्यू है।

—समझता हूँ।

—आप लोग पाकिस्तान के कौन से शहर के हैं?

—गुजरात।

ठाकुर साहिब हँसे।

—संयोग, मैं भी गुजरात से हूँ। पर इस ओर के गुजरात से। हमारे पूर्वज भी उधर से इधर आए थे। सीतलाबाद। गुजरात के आसपास ही कहीं रहा होगा।

—जी, गुजरात जम्मू-कश्मीर की तलहटी में है। कश्मीर जाने का पुराना पैदल रास्ता वहीं से होकर जाता था। मुगल बादशाहों के खेमे जिस मैदान में लगते थे वहाँ का नाम शाह जहाँगीर का मैदान पड़ गया था।

—दिलचस्प हैं हमारी ड्क्षकवदंतियाँ और ऐतिहासिक कहानियाँ। टाड का 'राजस्थान' पढ़ा है न।

—जी नहीं, आने से पहले सिर्फ यहाँ का गैजेटियर देखा। देसाई अंकल ने ताकीद की थी।

—हूँ! बेटी, जब लाहौर से तुम आई तो किस कॉलेज में पढ़ रही थीं। क्या कनेड कॉलेज में?

—जी नहीं। मुझे वहाँ एडमिशन नहीं मिला था। मैं उतनी अच्छी छात्रा भी नहीं थी। सो फतेहचंद कॉलेज में गई।

—होस्टल कैसा था?

—अच्छा।

—और मौंटसरी प्रशिक्षण—उसमें तुम्हारा फरुट क्लास है। कोर्स क्या दिल्ली से किया?

—जी।

—क्या इसमें रुचि रही?

—कैम्प में काम करते बच्चों को पढ़ाने पर लगा दिया गया। जो संस्थान शरणार्थियों के लिए ऐसे स्कूल चला रहे थे, उन्होंने कुछ लोगों को प्रशिक्षित किया। उन्हीं से प्रेरणा मिली।

—तुम्हारी योग्यता को ध्यान में रखकर ही तुम्हें यहाँ बुलाया गया है। देसाई बीच में कहीं नहीं आते। उनकी सिफारिश से तुम्हें नहीं बुलाया गया। हाँ, शिशुशाला के लिए अपरेटस कहाँ से मिलेगा—यह तो जानती हो न। एक ही फर्म है बम्बई में—तलाक्षी एंड कम्पनी।

—थैंक्यू सर। काम करूँगी तो आपको शिकायत का मौका नहीं दूँगी।

—तुम्हारी प्रिंसिपल का टैस्टीमोनियल दिलचस्प लगा था।

—जी, वे स्वयं बहुत अच्छी कवयित्री हैं और जो छुट-पुट मैं लिखने की कोशिश करती उसको वे सराहना से देखती थीं। मुझे उत्साहित करती थीं।

—तुमने कुछ प्रकाशित किया?

—जी एक कहानी, 'सिक्का बदल गया'। 'प्रतीक' में प्रकाशित हुई।

—'प्रतीक' कैसी पत्रिका है।

—गम्भीर रूप से साहित्यिक। उसके सम्पादक हिन्दी के बड़े कवि और उपन्यासकार अज्ञेय हैं।

सामने के कमरे में पहरेदार ने लाल बस्ता रखा और दूर से एक नजर चौकी पर डाल बाहर हो गया। उसने दीवार घड़ी की ओर देखा। फिर अपनी कलाई पर—

दीवान साहिब बोले—अभी बैठो, जुत्शी साहिब आते ही होंगे।

मुँह में सौंफ इलायची रखी कि पहरेदार ने अन्दर झाँककर कहा—हुकुम डाइरेक्टर साहिब।

दीवान साहिब और वह बैठक में दाखिल हुए। दीवान साहिब ने खड़े-खड़े ही कहा—इन्हें जो दिखाना चाहिए, दिखाइए। मेरे मित्र के मित्र की बेटी हैं। इतना ध्यान रखें कि इन्हें सिरोही पसन्द आए और हमारी शिशुशाला ठीक से चल निकले।

—हुकुम।

—बेटी, कुछ उलझन हो, जुत्शी जी उसे हल करेंगे।

—जी।

—अच्छा—

नमस्कार!

कमरे के बाहर सहन में लोग इन्तजार में खड़े थे और पहरेदार उनके कागज समेट रहे थे।

सीढिय़ों से नीचे उतरते जुत्शी साहिब ने पूछा—दीवान साहिब ने आपको बुलाया कि आप उनसे मिलने खुद चली आईं।

वह पहले खामोश रही। फिर कहा—सुबह दीवान साहिब ने गाड़ी भेज दी थी।

कुछ और पैडिय़ाँ उतरते हुए—क्या आप सिन्धी हैं?

उसने तुनककर कहा—भला यह क्यों पूछ रहे हैं, जुत्शी साहिब?

—इसलिए कि यहाँ सिन्धी शरणार्थी भरे पड़े हैं। हाँ, आप शरणार्थी होने का फार्म भर देंगी तो राशन मुफ्त मिल जाएगा। ओढऩे को कम्बल, रजाइयाँ भी।

लम्बी चुप्प।

उसने विषय बदलने के अन्दाज में कहा—जुत्शी साहिब, आप यहाँ

कब से हैं।

—मेरे पिताजी श्रीनगर से उदयपुर गए थे। फिर वहाँ से इधर आ गए और हम यहीं के हो गए।

मन ही मन सोचा, कहाँ श्रीनगर और कहाँ सिरोही। पर तुलना भी क्यों करें।

लाहौर की खामोश तमन्नाएँ रावी को निहारने लगीं।

जीप के साथ-साथ नया-पुराना वक्त एक बार फिर गुत्थमगुत्था हो गया। वह गुंजान मौसम और अनजान नगर सिरोही की यह अनमनी सी शरणार्थी दुपहर!

गला रुँध गया। क्या कर रही हूँ! ऐसा क्यों महसूस कर रही हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं कि भंग हुए ख्वाब उससे कहीं ज्यादा सुहावने लगते हैं जितने वह हकीकत में होते हैं।

इस भरम की जरूरत नहीं है। वह मौसम, वे गुलाबी ऋतु, मास ओझल हो चुके हैं। फिर कभी लौटकर न आने को।

नहीं आएँगे अब वह कभी भी।

विभाजन—एक शब्द।

शरणार्थी—एक विशेषण। लुटा-पुटा गरीब। कैम्पों में रहनेवाला। विस्थापितों को राशन मुफ्त मिल सकता है। फार्म भरा होना चाहिए तो कम्बल के भी हकदार हो सकते हैं! वह क्यों इस पर सोच रही

है? इसका न बुरा मनाया जा सकता है, न सराहा जा सकता है। यह तो एक स्थिति है। अपनी जड़ों से उखड़ने की। नई जगहों पर जमने की।

भागती जीप में से न नया पहचाना जा सकता है, न पुराना भुलाया जा सकता है। महल और किला, जो दीवानजी के यहाँ जाते दीख गए थे, वह अनजाने में ही ओझल हो गए हैं। पीछे छूट गए हैं।

सामने मोड़ की पुरानी खस्ता दीवार पर पीली सफेदी की सतह पर कत्थई अक्षरों में बड़ा-बड़ा लिखा हुआ है—

—विद्युत और पवन के समान हम अपने गन्तव्य की ओर बढ़ें।

मंजिल की ओर बढऩे के लिए क्या कोई सुरक्षित पड़ाव है?

जो कुछ भी इस हल्ले में से बच गया है उसे नष्ट होने से क्यों न बचाया जाए! जो-जो उस खून-खराबे से बच निकले हैं, वे क्यों न दूसरों के लिए अपने को सँभालें।

उस विज्ञापन को लेकर क्यों पछता रही हो जिसके लिए तुमने खुद अर्जी लिखी थी। टाइप करवाई थी और फिर ईस्टर्न कोर्ट डाकखाने से रजिस्टर्ड पोस्ट की थी। यहाँ पहुँच अब तुम उस इरादे से मुकर रही हो। पहाड़ों में दुबकी यह नगरी तुम्हें छोटी लग रही है। इस ठंडी निराशा और उदासी से अपने को उबारो। स्थितियों से लड़ने के लिए यह कुछ नहीं जुटाती, सिवाय आत्मकरुणा के, और आत्मकरुणा वह दलदल है जिसमें धँसकर कोई नहीं उबर सकता।

वह सतर्क होकर जुत्शी साहिब की ओर मुड़ी।

—आपने कुछ कहा?

—यही कि दीवान साहिब आपमें रुचि ले रहे हैं। सो अपना निर्णय करने में देर न करें। आप ज्यादा मीन-मेख निकालने लगीं तो यह आपके विपरीत भी जा सकता है। आखिर इतनी दूर से आईं हैं तो नौकरी ही की खातिर। मुझे आपके हालात नहीं मालूम—जरूर कोई मजबूरी रही होगी—

उसने बीच में ही टोककर कहा—धन्यवाद जुत्शी साहिब। मैं आपकी बात पर गम्भीरता से सोचूँगी।

जुत्शी साहिब पल-भर को खामोश हुए, फिर जोश से कहा—

—उधर देखिए, वह सामनेवाली इमारत। वही है जीतकुँवर बा शिशुशाला। दाईं ओर ऑफिस और स्टाफरूम है। महारानी साहिबा अहमदाबाद के श्रेयस की तरह का स्कूल चाहती हैं। आगे एक डिपार्टमेंटल स्टोर है। लगभग सभी कुछ मिल जाता है। इसके बनने की भी एक दिलचस्प कहानी है। महाराज स्वरूपङ्क्षसह अपने जागीरदार ठिकानेदार मुसाहबों को बता रहे थे कि राजपूत और व्यापारी में क्या फर्क है। महाराजा ठहरे, नगरसेठ को उसके बेटे के साथ बुला लिया।

बापू-बेटा दोनों हाथ बाँधे खड़े रहे।

—हुकुम।

बिना किसी भूमिका के बेटे को महाराज ने हुक्म दिया—बाप का साफा उतारने का। ऐसा कर सकोगे तो एक लाख तुम्हारा—

बाप ने बेटे को समझाकर कहा—बेटा तुम्हें जैसा कहा जा रहा है

वैसा ही करो। महाराज का हुक्म कैसे टाला जा सकता है!

बेटे ने वैसा ही किया।

महाराज आज्ञापालन पर खुश हुए।

—धनराशि कल सुबह घर पर पहुँच जाएगी।

दोनों ने हाथ जोड़ खम्मा बुलाई और घर की ओर मुँह किया।

महाराज अब तक इस प्रसंग से आश्वस्त हो चुके थे। दरबारियों से कहा—जो आपको दिखाना था वह आपकी आँखों के आगे घट चुका। बनिया बनिया है और राजपूत राजपूत है। उसके हाथ में पैसा आ रहा हो, वह उसे किसी कीमत पर छोड़ नहीं सकता। राजपूत का जा रहा हो, वह उसके जाने पर मलाल नहीं करता।

मुसाहब हँसने लगे।

महाराजा साहिब ने एक तपती नजर डाली।

—नाटक एक बात है। धन्धा दूसरी बात है। हम भी उधार नगरसेठ से ही माँगते हैं।

उसे हँसी नहीं आई।

दिल की सलवटों में खटास और कड़ुवाहट सरसराने लगी। क्या एक दूसरे पर कटाक्ष कसना जरूरी है! एक दूसरे पर ऐसी चोटें करना जरूरी है! ऐसी सोच तो एक दूसरे का अपमान है।

—हाँ, यह राज का यूरोपियन गेस्ट हाऊस है।

वह हँसी।

—आजादी के बाद यह नाम कुछ अटपटा लगता है। देसी गेस्ट हाऊस के मुकाबले जरूर बेहतर होगा, पर इसे नया नाम दिया जा सकता है।

—क्या दिल्ली में भी ऐसा कुछ किया जा रहा है।

—जी, किंग्सवे और क्वीन्सवे को राजपथ और जनपथ में बदल दिया गया है।

—हाँ, एक सुझाव है, आप चाहें तो दीवान साहिब से कहकर यूरोपियन गेस्ट हाऊस में कमरा माँग सकती हैं। दीवान साहिब मना नहीं करेंगे।

वह मन ही मन हैरान हुई—इस प्रस्ताव का भी भला क्या तात्पर्य हो सकता होगा!

कुछ न कहना ही ठीक समझा।

—इन दिनों यूरोपियन गेस्ट हाऊस में तो दिल्लीवालों की ही भीड़ जमा रहती है। पटेल साहिब का मंत्रालय खूब सक्रिय है।

—आजादी के बाद क्या यहाँ की स्थानीय राजनीति में कुछ फेर-बदल हो रहा है? प्रजामंडल ने जोर पकड़ा है। प्रजामंडल की सिफारिश पर पापुलर मिनिस्टर नियुक्त किए जा रहे हैं। लोकप्रिय मंत्री लोगों की शिकायतें दूर करेंगे। दिल्ली से चली है यह हवा।

—आपका ऑफिस कहाँ है जुत्शी साहिब।

—कॉल्विन की बिल्डिंग में। उसी में बैठता हूँ। मेरा दोहरा चार्ज

है। सुपरिंटेंडेंट ऐजूकेशन और कॉल्विन की प्रिंसिपलशिप। इस बार हमारे रिजल्ट अच्छे रहे हैं। जनता खुश है और महारानी साहिबा भी।

कॉल्विन के लम्बे बरामदों के सामने जीप जा रुकी। कमरे के सामने बेंच पर टाँग पर टाँग रखे बड़े पग्गड़ ने उठकर अभिवादन किया—खम्मा सरकार।

—पधारिए!

—चाय लेंगी?

उसने सहमति दी।

जुत्शी साहिब ने क्राकरीवाली अल्मारी की ताली चपरासी की ओर बढ़ाई।

—नया टी सेट निकालो और मिस साहिबा के लिए अच्छी-सी चाय बनाकर लाओ।

जितने जुत्शी साहिब कुछ जरूरी कागज और फाइलें निकालें, वह मन ही मन देवला वाली रफ्तार से चाय तैयार होने का अन्दाजा लगाने लगी।

पहले सेट अल्मारी से निकलेगा। धुलेगा, पुँछेगा। चाय का पानी खौलेगा। दूध गर्म होगा—ट्रे लगेगी और तब इस कमरे में पहुँचेगी।

जुत्शी साहिब की ओर देखा। वह फाइलें पढ़ने में मसरूफ थे। उनके पतले दुबले कश्मीरी चेहरे पर नुकीली नाक उनके शिक्षा जतनों के प्रति आश्वस्त ही करती थी।

फाइलों का ढेर मेज से फर्श पर जा पहुँचा। कलम कलमदान में और कुर्सी के पीछे से तावल उठा, उन्होंने चेहरा पोंछा और कलाई की घड़ी देखी।

हँसकर कहा—इन्तजार का फल मीठा। आपकी चाय रसोड़े से चल चुकी है।

सामने दरवाजे पर देखा। सजी-सजाई कश्मीरी टी-कोजी से ढँकी चाय की ट्रे मेज पर विराजमान हो गई।

कश्मीरी कढ़ाई की टी-कोजी इस दूर-दराज शहर में मन-आँखों को कुछ ऐसी भाई ज्यों किसी पुराने परिचित को देख लिया हो।

माहौल से कुछ निकटता महसूस की। सोचा, अपनी चिन्ताओं को लगभग रुखाई से जुत्शी साहिब की ओर सरका रही हूँ।

—एक-दो साल में कश्मीर तो जाना होता होगा! मेरी दादी माँ का मायका भी श्रीनगर कश्मीर में जमा है। उनके भतीजों के नाम हमें दिलचस्प लगते हैं। शक्ल-सूरत से कश्मीरी और नाम—

जंग बहादुर।

टेक बहादुर।

तेज बहादुर।

जुत्शी साहिब हँसे—

आप उन्हें याद कर रहे हैं कि उनकी बहादुरी को। जुत्शी साहिब की हँसी में कुछ ऐसा था जो उसे भाया नहीं।

—समझ लीजिए दोनों को।

सिरोही और श्रीनगर की सरगर्मियों में आप कितना फर्क करते हैं।

—फर्क है और नहीं भी। वहाँ शेख साहिब का दबाव है और यहाँ गोकुल भाई भट्ट का। यह बताइए कि दिल्ली किस कतर-ब्योंत पर लगी है। नेहरू और पटेल भी एक-दूसरे से राजनीति करने से बाज नहीं आते। अपनी-अपनी बात पर अड़े रहते हैं।

—यहाँ कुछ नई विकास योजनाएँ? शिक्षा के क्षेत्र में—

—कैसे बताया जाए आपको। नई योजनाएँ कैसे चलेंगी। यहाँ का राजपूत इसलिए नहीं पढ़ता क्योंकि उसे रजपूती लगी हुई है। बनिया इसलिए नहीं पढ़ता कि उसे दुकान लगी हुई है, और गरीब भील-गरासिया इसलिए नहीं पढ़ता कि उसे गरीबी लगी हुई है।

—प्रजामंडल और राजपरिवार में एक दूसरे के लिए कोई सहानुभूति?

जुत्शी साहिब हँसने लगे।

—यह दोनों ही गुजराती प्रभावों में हैं। देखिए यहाँ क्या होता रहा है, राज परिवार शादी-ब्याह के सिलसिले में गुजरात की ओर बढ़ता रहा है। उधर अम्बाजी का मन्दिर सिरोही के इलाके में स्थित है। गुजरात की आवाजाही वहाँ खूब रही है। राजमाता साहिबा कच्छ, भुज्ज की बेटी हैं। वही रीजैन्सी काउंसिल की अध्यक्ष हैं। चैम्बर ऑफ प्रिंसेज के प्रधान जाम साहिब, नावानगर सिरोही के ही दामाद साहिब हैं। गुलाब कुँवर बाई साहिबा नावानगर की महारानी हैं! दिल्लीवालों में उनका खासा रसूख है। सरदार पटेल से तो आप भी मिली होंगी।

वह बेसाख्ता हँसने लगी।

जुत्शी साहिब भौचक्क से देखने लगे।

—ऐसा क्या कह दिया मिस कि आप हँसने लगीं। बताइए, बताइए।

—जुत्शी साहिब, भारत सरकार के अलावा दिल्ली भी हम जैसे साधारण लोगों से ठसाठस भरी हुई है। इन दिनों तो पहले से कहीं ज्यादा। जिधर देखो उधर शरणार्थी ही शरणार्थी नजर आते हैं। नेताओं के चित्र तो हम भी हर सुबह अखबारों में देखते हैं।

—सही कह रही हैं। अब तो राज इन्हीं का होगा। राजा-महाराजा जागीरदार-ठिकानेदार तो सरकार के हत्थे चढ़ चुके हैं।

चाय का प्याला हाथ में लिया ही था कि जुत्शी साहिब ने भेदक निगाह से देखा और पूछा—तो क्या फैसला किया आपने?

उसने भोलेपन से कहा—आप किस ओर संकेत कर रहे हैं?

जुत्शी साहिब की आवाज पहले से कहीं कड़ी और सख्त होकर उस तक पहुँची—मैं पूछ रहा हूँ आपके यहाँ ज्वाइन करने के बारे में।

उसने विनम्रतापूर्वक कहा—माफ कीजिए, मैं कल तक का और वक्त लूँगी!

—देखिए, अपने तजुरबे से कह सकता हूँ कि इतनी दलीलों में न पड़िए। आपको बता दूँ कि चयन की अन्तिम सूची में दीवान साहिब का प्रत्याशी नम्बर दो पर है। वह अहमदाबाद के 'श्रेयस' जैसे किसी संस्थान में पढ़ाता रहा है।

उसने आवाज को धीमा और लचकीला बनाकर कहा—मैं कृतज्ञ हूँ कि आप मुझे यह बता रहे हैं।

अब तक जुत्शी साहिब की आँखों में कुछ तपिश-सी भर आई थी।

—जानती हैं आप कि आपके यहाँ आने की किसी को उम्मीद नहीं थी। नम्बर दो का इंटरव्यू तक ले लिया गया है।

जवाब में वह अनमनी-सी खिड़की के बाहर देखने लगी।

सुना, जुत्शी साहिब हल्की-फुल्की आवाज में कुछ कह रहे हैं।

—आपको केसरविलास भी ले जाना होगा। राजमाता साहिबा को मिलने के लिए। आपको वहाँ साढ़े चार बजे हाजिर होना होगा। आपके पास ट्रांसपोर्ट चार बजे पहुँच जाएगा। यहाँ से इकट्ठे निकल चलेंगे।

—जी।

जुत्शी साहिब जीप तक छोड़ने आए।

—खाने के बाद आराम कर लें। आप सफर में थक गई हैं, नहीं तो यहाँ पहुँचते ही एरिनपुरा वाली बस का वक्त क्यों पूछतीं।

उसने जवाब में कुछ नहीं कहा और जीप की ओर बढ़ गई।

वापस कमरे में आई तो पीछे-पीछे थाली आन पहुँची।

देवला।

उबले चावल के साथ तैरती मिरचाली छौंक-मूँग की धुली दाल में, खट्टा कद्दू और पापड़।

दो-चार चम्मच ही निगले थे कि आँखों से पानी रिसने लगा।

गिलास से डीक लगा ली और थाली परे सरका दी।

बाहर बरामदे में बैठे देवला को आवाज दी।

—देवला भाई, इधर आओ। बर्तन उठा लो।

देवला भरी थाली देख चिन्तित हो उठा।

—बाई जी, क्या मिरची लगी! महाराज ने तो कम ही डाली थी। पराँठा बनवाकर लाऊँ हुकुम!

—नहीं। मुझे भूख नहीं। सुबह पूरी खाई थी।

देवला के बाहर जाते ही उसने दरवाजा अटका दिया। सामने खिड़की से आती धूप पर परदा फैलाकर जाली में खोंसा। ढिलकते परदों का यह लापरवाह रख-रखाव उसमें खीझ पैदा करता है।

उसने सूटकेस खोल शाम के लिए नया जोड़ा निकाला और पलँग की टेवन पर रख दिया।

सोने की कोशिश में आँखों के आगे जाने क्या-क्या तैरने लगा!

दीवान साहिब जो कह रहे हैं उस पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं। जो प्रिंसिपल साहिब कह रहे हैं उस पर अविश्वास करने की भी कोई वजह नहीं। नम्बर दो प्रार्थी को पीछे करने का दारोमदार मुझ पर कैसे। मुझे बुलाया गया है, उस पर मैं उपस्थित हुई हूँ। क्या परोक्ष और क्या प्रत्यक्ष है, उसे वही जानें। हाँ तुम किस उधेड़बुन में हो? ऐसा कुछ देखो जिससे तुम्हें अगला मोड़ साक्षात नजर आए।

थोड़ी देर सो लो।

आँखें मूँदते ही पीठ गाड़ी की सीट पर जा लगी। कानों में एक लम्बी चीख! अचकचाकर खिड़की से बाहर देखा। एरिनपुरा स्टेशन! यह क्या, प्लेटफार्म पर पानी की बड़ी-सी टंकी औंधी पड़ी है, और उसके आसपास बिखरी पड़ी हैं खाली छागलें।

उसका हलक सूख रहा है। कहीं पानी मिलेगा!

गाड़ी उलटी चलने लगी है। यह क्या?

पानी की दूधारू धार। वह ओक से जी भर-भर पानी पीती है। मुँह-सिर को गीला करती है। गले पर छींटे देती है। भला कौन-सा स्टेशन है। ऐमनाबाद। वह अब शीशम के झुंड के बीचोबीच अपने फार्म

की तरफ चल रही है। दूर से पम्प की आवाज आ रही है। फफ्फ-फफ्फ-फफ्फ।

फिर वह मादक गंध, जो सिर्फ पके हुए खेतों से आती है।

वह फिर लपककर गाड़ी में आ बैठी है। इंजन आगे है मगर गाड़ी पीछे चल रही है। इंजन उसे पीछे धकेल रहा है।

उसने घबराकर आँखें खोल दीं।

दिल्ली स्टेशन का रिफ्रेशमेंट रूम। पिताजी के साथ चाय ली और नीचे उतर आए। ओवरब्रिज। छोटी लाइन पर लगी गाड़ी। सामान अन्दर लग गया है। वह खिड़की में से पिताजी को सुन रही है।

—तुम्हारी जिद्द नहीं है—यह मानता हूँ, पर मुझे लगता है तुम वहाँ रह नहीं पाओगी? रियासती ताना-बाना कुछ और ही होता है। क्योंकि यह तुम्हें मिलनेवाला पहला काम है, इसलिए जाने में शायद कोई हर्ज नहीं। एक अनुभव के रूप में ही तुम इसे लोगी।

पिताजी ने एक बन्द लिफाफा आगे किया।

—लौटने में तुम्हें कोई परेशानी और संकोच नहीं होना चाहिए! यह सिर्फ इसलिए!

—धन्यवाद पिताजी। वह हँसी—मैं इसे तब तक नहीं खोलूँगी जब तक सचमुच में जरूरी न हो।

पिताजी ने सिर हिलाया—

—जानता हूँ। एक बात जरूर याद रखना कि तुमने एम.ए. का फार्म भी भर रखा है।

—जी।

—रास्ते में ध्यान से—

गाड़ी प्लेटफार्म से सरकने लगी और पिताजी खिड़की के फ्रेम से दूर होते चले गए।

गाड़ी मीटरगेज की पटरियों पर पहुँच गई है। मद्धम रोशनियोंवाली साधारण मँझोली बस्तियाँ।

पहुँच रही है गाड़ी सराय रोहिल्ला।

छोटा-सा घुन्ना स्टेशन। शकूर बस्ती की छाँह में अपने को बनाए हुए।

बाहर देखा। बड़े स्टेशन की रौनक गायब। प्लेटफार्म पर अधमैली भीड़। एक दूसरे को धकियाती, शोर मचाती। बुरके उठाए औरतें। पुराने टीन के बक्सों में अपने छोड़े हुए गाँव-कस्बे उठाए शरणार्थी। छुटपुट बचे-खुचे असबाब—

यह क्या?

नवीन जी और भगवतीचरण वर्मा जी यहाँ। यह तो नेताओं का स्टेशन नहीं।

देखते-झाँकते नवीन जी और भगवतीचरण जी उसके डिब्बे के सामने।

—हैलो नवीन जी, वर्माजी नमस्कार—आप यहाँ कैसे—मैं सिरोही जा रही हूँ।

—तुम ऐसा कुछ नहीं करोगी। दिल्ली छोड़कर नौकरी के लिए सिरोही!

उसने गम्भीरता से कहा—मैं फैसला कर चुकी हूँ।

—देखो मैं और भगवती बाबू तुम्हारे यहाँ पहुँचे थे, तुम्हें यह बताने के लिए, पद्मजा कल आ रही हैं। उसे तुम्हारे जैसी लड़की की जरूरत है। उसे सेक्रेटरी चाहिए। सो सामान उतारो, जल्दी करो। गाड़ी यहाँ ज्यादा नहीं ठहरती।

—मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगी। हाँ, मुझे वहाँ कुछ जँचा तो रहूँगी, नहीं तो वापस लौट आऊँगी। मैं पद्मजा जी के साथ काम नहीं कर सकूँगी। मुझे इस तरह के काम में कोई दिलचस्पी नहीं। मैं कैम्पस में काम कर चुकी हूँ।

—मेरे साथ काम करना कैसा रहेगा! तुम्हें कोई शिकायत ही नहीं होगी।

—आप जानते हैं नवीन जी, मैं अपनी मरजी के खिलाफ ऐसे काम नहीं करती। मित्र और पड़ोसियों के साथ तो बिलकुल नहीं।

—कैसी बात कर रही हो!

भगवती बाबू बोले—लौटकर तो दिल्ली ही आना होगा।

गाड़ी चल पड़ी।

5, विंडसर प्लेस! घर से दूर ही कितना है। पहले अचिन्तरामजी, फिर पुरुषोत्तमदास टंडन, फिर कुछ मिनट पैदल और नवीनजी। और कैनिंग लेन में वर्मा जी।

नवीन जी ने सरला से मिलवाया था। नीली साड़ी में वह बहुत चमकीली लग रही थीं। दोनों एक दूसरे के लिए—मगर उम्र का लम्बा फासला दोनों के बीच। बरसों जेल में काटने के बाद आप नवीनजी के लिए कामना करते हैं कि उनके लिए कुछ टिकाऊ हो।

उसने खिड़की का शटर गिरा दिया। साथवाले यात्रियों पर चौकन्नी नजर डाली और सोने की तैयारी में पर्स सिर के नीचे रख लिया। और काँच के पार अँधेरों में भागते लम्बे वीरानों को देखती चली। गाड़ी की आवाज में जाने किस-किस की आवाजें पीछा कर रही हैं।

जब कबीले जड़ों से उखड़ते हैं, भूचाल की तबाही से बिखरते हैं तो सब कुछ उलट-पुलट हो जाता है। नीचे का ऊपर और ऊपर का नीचे।

तभी हँसी और रुलाई एक ही मुद्रा में उद्घाटित होती है। उच्छवास का भी कोई अर्थ होता होगा। अलहदगी। अपनों और परायों से। नाते-रिश्तों से। सगे-सम्बन्धियों और मित्रों से। सबसे बढ़कर तो, स्वयं अपने से। इसे व्यक्त करने के सामथ्र्य को हिन्दू-मुसलमान के नाम पर रियाआ कई-कई बेरहम मौसम जी चुकी। कोई हरा-भरा समय जैसे जंगलों की आग में झोंक दिया गया हो। इससे बचकर दौड़ने पर पीठ में छुरा घोंप दिया गया हो। समय की पीठ। बचनेवाला आगे-आगे मारनेवाला पीछे-पीछे। वहशत। हिंसा की वह दशहत।

आसपास कहीं कोई आहट है। समय दौड़ रहा है। क्या मेरे समय की पगध्वनि है?

घबराकर आँखें खोल दीं।

बाहर हॉर्न बज रहा है। राजमाता साहिब से मिलने जाना है।

दरवाजा खोल हाथ से इशारा किया—आ रही हूँ।

कपड़े बदले। बड़े पर्स को खाली कर पाउच में डाल लिया। काम्पैक्ट में चेहरा देखा और एड़ीदार जूती पहनते ही चाल की सुघड़ाई लौट आई।

जो कुछ भी तुममें अब तक का महफूज है—सुरक्षित है, आज के

दिन के लिए काफी है। जब इतिहास बदलते हैं तब भूगोल भी बदल जाते हैं। परिवारों के, खानदानों के, शहरों और गाँवों के, इमारतों के, तहसीलों के, जिलों के। कचहरियों और सरकारों के।

[*गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान* पुस्तक से]

शरणार्थी

*

प्रभात

तुम गीत गाते थे
लोक गायक थे इलाके के
वह कुर्ता जो तुम केवल गायकी के समय पहनते थे
उसे खूँटी पर टाँग देते थे अगले गायन समारोह तक
खेतों में बंडी में ही रहते थे स्याड़े, झकराड़े, चौमासे में
तुम किसान ही नहीं थे केवल
छोटे-मोटे इंजीनियर थे गाँव के
इंजन ठीक करने कुएँ में उतरते थे
पेचकस, पाने, प्लास के साथ
बुनना रस्सी, पीढ़ा और खाट
ऐसे ही जानते थे तुम्हारे हाथ
जैसे गाय के पेट से बाहर आते बछड़े के
पीले खुरों को खींचना
और इतने हुनर के साथ
तुम नहीं थे जरा भी खास
हर घर में हर कोई
कमोबेश ऐसा ही था

तुम उस समाज से आते थे
प्राचीन काल से ही जिसकी रुचि थी कलाओं में
तुम्हारी कलाओं का धूल में मिलना
नदियों के धूल में मिलने जितनी पुरानी बात है
तुम्हारी संस्कृति का धूल में मिलना
जंगलों के धूल में मिलने जितनी पुरानी बात है

तुम्हारी कलाएँ अपने आप नहीं मिलीं धूल में
उन्हें धूल में मिलाया गया
तुम्हारे जंगल अपने आप नहीं मिले धूल में
उन्हें धूल में मिलाया गया
तुम्हारी भाषा अपने आप नहीं मिली धूल में
उसे धूल में मिलाया गया

तुम्हारे बीजों के साथ शिकार किया गया
तुम्हारे खेतों के साथ शिकार किया गया
तुम्हारी फसलों की कीमतों का शिकार किया गया
तुम्हारे मनुष्य प्रेम का शिकार किया गया
तुम्हारी जिजीविषा का शिकार किया गया

तुम उस सभ्यता से आते थे
जो चली आई थी यहाँ तक
बिना युद्धों और नरसंहारों के
अन्न और फूल उगाती हुई
श्रम में रस लेना सिखाती हुई

तुमने अपने बगीचों को सूखते देखा
बिना यह जाने कि आखिर ये कैसे सूखे
तुमने अपने तालाबों को सूखते देखा
बिना यह जाने कि आखिर ये कैसे सूखे
तुमने अपने बच्चों को सूखते देखा

बिना यह जाने कि आखिर ये कैसे सूखे

और एक दिन यह हुआ
तुमसे किसी ने नहीं कहा
तुम खुद ही चले गए
नीम के फूलों से भरी खाट को
कोने में खड़ी कर
खेतों में आक और बबूल उगने के लिए छोड़कर
सूने घर में चमगादड़ें लटक जाने के लिए छोड़कर

तुम्हें किसी ने जेल नहीं भेजा
तुम खुद ही चले गए कम्पनियों के हवाले किए जा चुके
राष्ट्र की खुली जेल में

तुम खुद ही जेल से बदतर कपड़े पहनने लगे
जेल से बेकार तश्तरी में खाने लगे
बिना बिछौने के सोने लगे

तुम एक ऐसी खुली जेल में हो
जिसे जेल कहने का चलन नहीं
इसलिए कोई मिलने भी नहीं आता तुमसे

तुम्हारे जिले के बाँध के जिस पानी के अभाव में
तुम्हारे खेत सूख गए
तुम्हारे घड़े के तल में दिनोंदिन मिट्टी बढने लगी
वह पानी यहाँ महानगर में शॉवरों से ढुलाया जाता है
तुम अपने जिले के जिस पानी के पीछे चलते हुए यहाँ आ गए
तुम्हारे लिए यहाँ भी झुग्गियों में
वैसा ही हाहाकार है पानी का

आजीवन कारावास नहीं है फिर भी
जैसे-जैसे बरस बीत रहे हैं

तुम्हारी वापसी की सम्भावनाएँ
क्षीण होती जा रही हैं

तुम्हारे आधार कार्ड में
तुम्हारा कैदी नम्बर लिखा है
इसे सुरक्षित रखना
अब इतने बरस हो गए तुम्हें
शरणार्थियों की तरह रहते
कि बिना इसके
कभी भी खदेड़ा जा सकता है तुम्हें इस राष्ट्र से

आई साल तुम सरीखों की बढ़ती भीड़ देखकर
समझ नहीं पड़ता
अब इस राष्ट्र में
निवासी अधिक हैं कि शरणार्थी

तुम जिन्दा लाश हो एक सभ्यता एक संस्कृति की
तुम जिन्दा लाश हो जीवन में गहरी अभिरुचि की
तुम जिन्दा लाश हो एक देश की स्मृति की

तुम्हारी लाश को यह कौन अपने आदमी की लाश बता रहा है
काल से टकराती यह आवाज किसकी है
इस पृथ्वी पर यह कौन तुम्हें आवाज लगा रहा है

[*जीवन के दिन* पुस्तक से]

राजकमल प्रकाशन समूह

साथ जुड़ें साथ पढ़ें

98108 02875